वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का ४०वाँ पुष्प

भगवान ऋषभदेव

रचयित्री :

जम्बूद्वीप रचना की पावनप्रेरिका, इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम,
सर्वतोभद्र, तीनलोक आदि विधानों की रचयित्री
चारित्रचन्द्रिका, गणिनी प्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

प्रकाशक :

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

हस्तिनापुर (मेरठ) उ० प्र०

तृतीय संस्करण	वीर नि० सं० २५२५	न्यौछावर
५००० प्रतियां	दिसम्बर १९९८	१०.००

भगवान् वृषभदेव

विद्याधर के स्वामी महाबल

संतोष कुमार मुनिराज की वन्दना करके प्रार्थना करता है।

संतोष कुमार–हे गुरुदेव ! आज हमें किसी विद्याधर का आदर्श जीवन सुनाइये। तथा विद्याधरों में क्या-क्या विशेषतायें होती हैं, यह भी बतलाइये।

मुनिराज–तुमने बहुत ही अच्छी जिज्ञासा व्यक्त की है। सुनो, मैं एक महान् आत्मा का जीवनवृत्त सुनाता हूं। इसी जम्बूद्वीप में विदेहक्षेत्र के अन्तर्गत 'गंधिला' नाम का देश है। अपने इस भरत क्षेत्र के सदृश वहां पर भी मध्य में विजयार्ध पर्वत है, जिसकी दक्षिण-उत्तर दोनों ही श्रेणियों में विद्याधर लोग निवास करते हैं। इस पर्वत की उत्तर श्रेणी में 'अलका' नाम की सुन्दर नगरी है। वहां पर 'महाबल' नाम के राजा धर्मनीति पूर्वक प्रजा का पालन करते थे। उनके महामति, संभिन्नमति, शतमति और स्वयंबुद्ध ये चार मंत्री थे।

विद्याधरों के पास तीन प्रकार की विद्यायें हुआ करती हैं। जातिविद्या, कुलविद्या और साधितविद्या। मातृ पक्ष से प्राप्त विद्या जातिविद्या है। पितृ पक्ष से प्राप्त विद्या कुलविद्या है एवं मंत्रादि से सिद्ध की हुई विद्या साधितविद्या है। इन विद्याओं के बल से वे अनेक प्रकार के रूप, महल, नगर, वस्तु आदि बना लेते हैं और भोगोपभोग सामग्री से अधिक सुखी रहते हैं। विद्या के बल से यत्र तत्र मानुषोत्तर पर्वत तक विहार करते रहते हैं। मेरु आदि पर्वतों पर जाकर भक्ति, पूजा,

वन्दना करके महान् पुण्य बंध किया करते हैं।

किसी दिन राजा महाबल की जन्मगांठ का उत्सव हो रहा था, विद्याधरों के राजा महाबल सिंहासन पर बैठे हुए थे। उस समय वे राजा चारों तरफ में बैठे हुए मंत्री, सेनापति, पुरोहित, सेठ तथा विद्याधर आदि जनों से घिरे हुए, किसी को स्थान, मान, दान देकर, किसी के साथ हंसकर, किसी से संभाषण आदि कर सभी को संतुष्ट कर रहे थे। उस समय राजा को प्रसन्नचित्त देखकर स्वयंबुद्ध मंत्री ने कहा—हे राजन! जो आपको यह विद्याधरों की लक्ष्मी प्राप्त हुई है, उसे केवल पुण्य का ही फल समझिये। ऐसा कहते हुए मंत्री ने अहिंसामयी सच्चे धर्म का विस्तृत विवेचन किया।

यह सुनकर महामति नाम के मिथ्यादृष्टि मंत्री ने कहा, कि हे राजन ! इस जगत् में आत्मा, धर्म और परलोक नाम की कोई चीज नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार भूतों के मिलने से ही चैतन्य की उत्पत्ति हो जाती है। जन्म लेने से पहले और मरने के पश्चात् आत्मा नाम की कोई चीज नहीं है। इसलिए आत्मा की और परलोक की चिंता करना व्यर्थ है। जो लोग वर्तमान सुख को छोड़कर परलोक संबंधी सुख चाहते हैं, वे दोनों लोकों के सुख से च्युत होकर व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं।

अनंतर संभिन्नमति मंत्री बोलने लगा कि, हे राजन ! यह सारा जगत् एक विज्ञान मात्र है क्योंकि यह क्षण भंगुर है। जो-जो क्षण भंगुर होते हैं ये सब ज्ञान के ही विकार हैं। ज्ञान से पृथक् चेतन-अचेतन आदि कोई भी पदार्थ नहीं है। यदि पदार्थों का अस्तित्व मानो तो वे नित्य होना चाहिए परन्तु संसार में कोई भी पदार्थ नित्य नहीं दिखते हैं, सब एक-एक क्षण में ही नष्ट हो जाते हैं। अतः परलोक में सुख प्राप्ति हेतु धर्म कार्य का अनुष्ठान करना बिल्कुल ही व्यर्थ है।

इसके बाद शतमति मंत्री अपनी प्रशंसा करता हुआ नैरात्म्यवाद

को पुष्ट करने लगा। उसने कहा कि यह समस्त जगत् शून्य रूप है, इसमें नर, पशु, पक्षी, घट, पट आदि जो भी चेतन-अचेतन पदार्थ दिख रहे हैं वे सर्व मिथ्या हैं। भ्रांति से ही वैसा प्रतिभास होता है जैसे कि इन्द्रजाल और स्वप्न में दिखने वाले पदार्थ मिथ्या ही हैं, भ्रांति रूप ही हैं। आत्मा-परमात्मा तथा परलोक की कल्पना भी मिथ्या ही है। अतः जो पुरुष परलोक के लिए तपश्चरण आदि अनुष्ठान करते हैं, वे यथार्थ ज्ञान से रहित हैं।

इन तीनों मंत्रियों के सिद्धान्तों को सुनकर स्वयंबुद्ध मंत्री ने अपने सम्यग्ज्ञान के बल से उनका बलपूर्वक खंडन करके स्याद्वाद सिद्धान्त को सत्य सिद्ध कर दिया तथा राजा महाबल के पूर्वजों का पुण्य चरित्र भी सुनाते हुए धर्म और धर्म के फल का महत्व बतलाया। इस प्रकार स्वयंबुद्ध मंत्री के उदार और गम्भीर वचनों से समस्त सभा प्रसन्न हो गई।

किसी समय स्वयंबुद्ध मंत्री सुमेरु पर्वत की वन्दना को गया था। वहां वन्दना करते हुए सौमनसवन के पूर्व दिशा के चैत्यालय में बैठ गया। अकस्मात् ही पूर्व विदेह से युगमंधर भगवान् के समवसरण रूपी सरोवर के मुख्य हंस स्वरूप आकाश में चलने वाले आदित्यगति और अरिंजय नाम के दो मुनिराज वहां आ गये। बुद्धिमान् मंत्री ने उनकी पूजा-स्तुति आदि करके उपदेश श्रवण किया। अनंतर प्रश्न किया कि हे भगवन् ! हमारा महाबल स्वामी भव्य है या अभव्य?

आदित्यगति मुनिराज ने कहा—हे मंत्रिन् ! तुम्हारा स्वामी भव्य ही है। वह इससे दशवें भव में भरत क्षेत्र का प्रथम 'तीर्थंकर' होगा। पश्चिम विदेह के गंधिला देश में सिंहपुर नगर है। वहां के राजा श्रीषेण के जयवर्मा और श्रीवर्मा नाम के दो पुत्र थे। उनमें से छोटा श्रीवर्मा माता-पिता और सभी को अतिशय प्रिय था, अतः राजा ने उसे ही राज्य भार सौंप दिया और बड़े पुत्र की उपेक्षा कर दी। इस घटना से जयवर्मा

ने पूर्वकृत पापों की निन्दा करते हुए विरक्त होकर स्वयंप्रभ गुरु से जिन-दीक्षा ले ली। वह मुनि नव दीक्षित था। एक दिन आकाश मार्ग से जाते हुए महीधर विद्याधर का वैभव देखकर विद्याधर के भोगों का निदान कर लिया अर्थात् 'ये विद्याधर के भोग मुझे अगले भव में प्राप्त हों' ऐसा भाव कर लिया। उसी समय वामी से निकल कर एक भयंकर सर्प ने उसे डस लिया। वह मुनिराज मरकर के आपके राजा महाबल हुए हैं। पूर्व में भोगों की इच्छा से आज भी उसे भोगों में आसक्ति अधिक है। किन्तु अभी आपके वचनों से वह शीघ्र ही विरक्त होगा। आज रात को उसने स्वप्न देखा है कि तीन मंत्रियों ने उसे जबरदस्ती कीचड़ में गिरा दिया और तुमने मंत्रियों की भर्त्सना करके राजा को सिंहासन पर बिठा कर अभिषेक किया है। अनंतर दूसरे स्वप्न में अग्नि की एक ज्वाला को क्षीण होते हुए देखा है। अभी वह तुम्हारी ही प्रतीक्षा में बैठा है, अतः तुम शीघ्र ही जाकर उसके पूछने के पहले ही स्वप्नों को फल सहित बतलाओ।

मंत्री स्वयंबुद्ध ने तत्क्षण ही जाकर राजा को बताया कि प्रथम स्वप्न का फल भविष्य में विभूतिसूचक है एवं द्वितीय स्वप्न का फल यह है कि आपकी आयु एक माह की शेष रह गई है। अब शीघ्र ही धर्म को धारण करो और बहुत कुछ विस्तृत रूप में धर्म का उपदेश दिया। राजा महाबल ने विरक्त चित्त होकर अपने पुत्र अतिबल को राज्य देकर घर के उद्यान के जिन मन्दिर में आठ दिन तक आष्टाह्निक महायज्ञ पूजन किया। अनन्तर सिद्धकूट चैत्यालय में जाकर गुरु की साक्षीपूर्वक जीवन-पर्यन्त के लिए चतुराहार का त्याग करके विधिवत् सल्लेखना ग्रहण कर ली। मन्त्री को सल्लेखना कराने में निर्यापकाचार्य बनाकर सन्मान किया। शरीर से निर्मम हो बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह का त्याग कर वह मुनि के सदृश प्रायोपगमन संन्यास में स्थिर हो गया। इस संन्यास में स्वकृत-परकृत उपकार की अपेक्षा नहीं रहती है। कठिन

तपश्चर्या करते हुए महाबल विद्याधर ने शरीर को अतिशय क्षीण करके पंच परमेष्ठियों का स्मरण करते हुए अत्यन्त निर्मल परिणामों को प्राप्त हो गया। मांस रक्त के सूख जाने पर महाबल ने शरीर को छोड़ कर ऐशान स्वर्ग में श्रीप्रभ विमान में 'ललितांग' नामक उत्तम देव हो गया। इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से धर्म की सहायता करने वाले मन्त्री ने अन्त तक अपने मन्त्रीपने का कार्य किया।

सन्तोष कुमार–गुरुदेव ! आपने बहुत ही सुन्दर कथा सुनाई है। वास्तव में हितैषी बन्धु, मन्त्री, पत्नी, पुत्र, मित्र वे ही हैं जो मोक्षमार्ग में लगाते हैं। किन्तु आजकल तो ये परिकर लोग धर्म से हटाकर विषयों में फंसाने में ही सच्ची हितैषिता समझते हैं।

मुनिराज–पूर्वकाल में भी ऐसे लोग थे जो कि धर्म से छुटाकर पाप मार्ग में या विषयों में लगाकर अपना प्रेम व्यक्त करते थे किन्तु ऐसे लोग कम थे। और आज भी ऐसे लोग हैं जो अपने कुटुम्बियों को हितकर धर्ममार्ग में–त्याग मार्ग में लगाकर प्रसन्न होते हैं परन्तु ऐसे लोग विरले ही हैं। अस्तु ! आपको स्वयं ऐसा बनना चाहिए, दूसरों की तरफ दृष्टिपात करने से क्या सिद्ध होगा ?

सन्तोष कुमार–अच्छा भगवन् ! नमोस्तु भूयात् पुनर्दर्शनम्।

●●●

राजा वज्रजंघ का आहारदान

सन्तोष कुमार–हे गुरुदेव ! आज मैं आहारदान के महत्व की कथा सुनना चाहता हूं।

मुनिराज–हे वत्स ! सुनो, मैं आज राजा वज्रजंघ और रानी श्रीमती का इतिहास सुनाता हूं। ललितांग देव अणिमा, महिमा आदि ऋद्धियों का धारक ऐशान स्वर्ग के दिव्य भोगों का अनुभव कर रहा था ! उस देव के चार हजार देवियाँ थीं और चार महादेवियाँ थीं। महादेवियों के

नाम क्रमशः स्वयंप्रभा, कनकप्रभा, कनकलता और विद्युल्लता थे। देवों की आयु सागर प्रमाण से रहती थी और देवियों की आयु पल्य के प्रमाण से रहती थी। अतः उस देव की अनेकों देवियाँ अपनी-अपनी आयु पूर्ण कर चुकीं और उनके-उनके स्थान पर अन्य-अन्य देवियां आती गयीं। जब ललितांग देव की आयु कुछ पल्य प्रमाण ही शेष रही तब स्वयंप्रभा नाम की अतिशय प्यारी महादेवी उत्पन्न हुई।

वह देव स्वयंप्रभा देवी के साथ मेरुपर्वत, मानुषोत्तर पर्वत आदि पर सदैव क्रीड़ा किया करता था। किसी समय अकस्मात् ललितांगदेव के गले की मंदार की माला मुरझा गई। और भी अनेकों चिह्नों से देव ने अपनी आयु छह माह की अवशेष जान ली और शोक से पीड़ित हो गया। इस समाचार को जानकर सामानिक जाति के देवों ने आकर ललितांगदेव को समझाना शुरू किया। उन्होंने कहा—हे देव ! अधिक कहां तक कहा जावे, स्वर्ग से च्युत होने के सम्मुख देव को जो तीव्र दुःख होता है वह नारकी को भी नहीं हो सकता। इस समय आप प्रत्यक्ष उस दुःख का अनुभव कर रहे हैं, किन्तु स्वर्ग से च्युत होना अनिवार्य है। इसलिए हे आर्य ! ऐसे धर्म का अवलम्बन करो जो कि जन्म-मरण के चक्कर से छुटाने वाला है। यह धर्म परम शरण है।

इस प्रकार देवों के सम्बोधन से ललितांगदेव ने धैर्य को धारण कर धर्म में बुद्धि लगाई और पन्द्रह दिन तक समस्त लोक के जिन चैत्यालयों की पूजा की। अनन्तर अच्युत स्वर्ग की जिन-प्रतिमाओं की पूजा करता हुआ आयु के अन्त में स्थिर चित्त होकर चैत्य वृक्ष के नीचे बैठ गया। तथा वहीं निर्भय हो हाथ जोड़कर उच्च स्वर से नमस्कार मन्त्र का उच्चारण करता हुआ अदृश्य हो गया अर्थात् मर गया।

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश है, उसमें उत्पल-खेट नाम का नगर है। वहां के राजा वज्रबाहु की रानी वसुंधरा ने शुभ दिन पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम 'वज्रजंघ' रखा गया। वह

वज्रजंघ अपनी रूप संपत्ति से मानो ललितांगदेव के रूप को भी हँस रहा था।

उधर ईशान स्वर्ग में स्वयंप्रभा देवी ललितांगदेव के वियोग में बहुत ही संताप को प्राप्त हुई। तब दृढ़धर्मदेव ने उसका शोक दूर करके उसे धर्म में स्थिर किया। उस समय वह स्वयंप्रभा छह महीने तक बराबर जिन पूजा करने में उद्यत रही। तदनन्तर सौमनस वन सम्बन्धी पूर्व दिशा के जिन मन्दिर में चैत्य वृक्ष के नीचे पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुए समाधि पूर्वक प्राण त्याग कर स्वर्ग से च्युत हुई। पूर्व विदेह के पुण्डरीकिणी नगर के राजा वज्रदन्त की रानी लक्ष्मीमती से 'श्रीमती' नाम की कन्या हो गई। और क्रमशः कन्या ने यौवन अवस्था को प्राप्त कर लिया।

एक दिन केवली भगवान् के पूजार्थ देवों के आगमन को देखकर श्रीमती को ललितांगदेव का स्मरण हो आया। अनन्तर उसने एक चित्रपट पर ललितांगदेव सम्बन्धी घटनायें बनाकर अपनी धाय को दे दिया और वह पंडित धाय महापूत जिनालय में जाकर वह चित्रपट लेकर बैठ गई। अनेकों राजकुमारों के अनंतर कदाचित् वह वज्रजंघ राजकुमार वहां दर्शनार्थ आये और चित्रपट को देखते ही उन्हें जातिस्मरण हो गया। कुमार वज्रजंघ ने भी अपना परिचय देकर और अपना चित्रपट देकर उस पंडिता को विदा कर दिया।

चक्रवर्ती वज्रदन्त की वसुंधरा बहन थी और बज्रबाहु बहनोई तथा वज्रजंघ भानजा था। बड़े ही आदर से वज्रजंघ के साथ श्रीमती का विवाह सम्पन्न हो गया।

चक्रवर्ती की कन्या को ब्याह कर राजकुमार वज्रजंघ दूसरे दिन सायंकाल में अनेक दीपकों का प्रकाश कर रानी श्रीमती के साथ महापूत जिनालय में दर्शनार्थ आये। और स्वर्णमयी जिनप्रतिमा का अभिषेक करके अष्ट द्रव्यों से पूजा की, अनेकों स्तुतियों से जिनेन्द्र भगवान् की

स्तुति करके राजमहल में आ गये।

किसी समय अपनी ससुराल जाते हुए राजा वज्रजंघ ने वन में डेरा डाल दिया। वहीं पर आकाश में गमन करने वाले दमधर और सागरसेन मुनिराज आहारार्थ पधारे। उन्होंने वन में ही आहार लेने की प्रतिज्ञा कर रखी थी। राजा वज्रजंघ ने रानी श्रीमती के साथ उनको भक्ति से पड़गाहा और विधिवत् आहार दान दिया, उसी समय देवों ने पंचाश्चर्य वृष्टि कर दी। अनन्तर कंचुकी के कहने से यह मालूम हुआ कि ये तुम्हारे ही अन्तिम युगल पुत्र हैं। अर्थात् बाबा वज्रबाहु के साथ वज्रजंघ के अट्ठानवें पुत्रों ने दीक्षा ग्रहण कर ली थी। उनमें से ये अन्तिम युगल पुत्र थे। यह जानकर राजा-रानी के हर्ष का पार नहीं रहा।

उनकी भक्तिपूजा करके उनसे धर्म का स्वरूप सुना, पुनः अपने और श्रीमती के तथा औरों के पूर्व भव पूछे। दमधर मुनिराज ने बतलाया कि हे राजन् ! आप इससे आठवें भव में भरतक्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव होंगे और श्रीमती का जीव राजा श्रेयांस होकर दान तीर्थ का प्रवर्तक होगा। ये मतिवर मन्त्री आदि जो बड़े प्रेम से आहार दान देख रहे थे, इनमें से क्रमशः मतिवर मंत्री का जीव भरत चक्रवर्ती होगा। आनन्द पुरोहित का जीव बाहुबलि होगा, अकंपन सेनापति वृषभसेन पुत्र होगा एवं धनमित्र सेठ अनन्तविजय पुत्र होगा। ये सिंह, सूकर, वानर और नकुल जो बड़े प्रेम से आहारदान देख रहे थे, ये इस दान की अनुमोदना से उन्नति करते हुए आपके वृषभदेव की पर्याय में क्रमशः विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नाम के पुत्र होंगे। ये सभी जीव आपके तीर्थ में ही मोक्ष को प्राप्त करेंगे। इन सबका सम्बन्ध सुनकर राजा वज्रजंघ आदि सभी को महान् हर्ष हुआ।

सन्तोष कुमार–हे भगवन् ! राजा वज्रसंघ ने एक बार में ही आहारदान देकर इतना महान् पुण्य संचय कर लिया था। पुनः उनकी क्या गति हुई ?

मुनिराज–हां कुमार ! सचमुच में आहारदान का फल अचिंत्य है।

अच्छा सुनो ! किसी समय वे राजा-रानी श्रीमती के साथ महल में सोये हुए थे। नौकरों ने कमरों को सुगन्धित करने के लिए धूप खेई थी। अनन्तर खिड़कियाँ खोलना भूल गये। बस अन्दर में धुयें के रुक जाने से दोनों के कंठ रुँध गये और वे दीर्घ निद्रा में सो गये अर्थात् मर गये।

अहो ! देखो जो भोगोपभोग की वस्तुएँ आनन्ददायी होती हैं, वे ही मृत्यु का कारण बन गईं, इसलिए इन भोगों को धिक्कार हो।

इस दान के प्रभाव से वे दोनों मरकर उत्तरकुरु नामक उत्तम भोगभूमि में दम्पत्ति हो गये और वहां पर दस प्रकार के कल्पवृक्षों के भोगों का अनुभव करने लगे।

●●●

भोगभूमिज को मुनि दर्शन

सन्तोष कुमार–हे गुरुदेव ! क्या भोगभूमि में सम्यक्त्व की उत्पत्ति हो सकती है ?

मुनिराज–हां हो सकती हैं। देखो, मैं तुम्हें इस सम्बन्ध में एक सुन्दर घटना सुनाता हूँ।

किसी समय वज्रजंघ आर्य अपनी स्त्री के साथ कल्पवृक्ष की शोभा देखते हुए बैठे थे कि वहां पर आकाश मार्ग से दो चारण-ऋद्धिधारी मुनि उतरे। वज्रजंघ के जीव आर्य ने शीघ्र ही पत्नी सहित खड़े होकर उनका विनय करके नमस्कार किया। उस समय उन दोनों दम्पत्तियों के नेत्रों से हर्षाश्रु निकल रहे थे। दोनों मुनि दम्पत्ति को आशीर्वाद देकर यथायोग्य स्थान पर बैठ गये। उनके नाम प्रीतिंकर और प्रीतिदेव थे। वज्रजंघ ने पूछा–हे भगवन् ! आप कहां से आये हैं ? आपके प्रति मेरे हृदय में आत्मीयता का भाव उमड़ रहा है।

प्रीतिंकर मुनिराज बोले—हे आर्य ! आप इससे पूर्व चतुर्थ भव में विद्याधर के राजा महाबल थे और मैं आपका स्वयंबुद्ध नाम का मन्त्री था। उस समय मैंने तुम्हें जैनधर्म ग्रहण कराया था, पुनः मैं जैनेश्वरी दीक्षा लेकर अन्त में मरकर स्वर्ग में गया। वहां से पूर्व विदेह के राजा प्रियसेन की रानी सुन्दरी देवी के मैं प्रीतिंकर पुत्र हुआ हूं और यह प्रीतिदेव महातपस्वी मेरा छोटा भाई है। हम दोनों ने स्वयंप्रभ जिनराज के समीप दीक्षा लेकर अवधिज्ञान एवं चारणऋद्धि प्राप्त कर ली है। चूंकि उस भव में आप मेरे परम मित्र थे इसलिए आपको समझाने के लिए हम यहां आये हैं।

हे भव्य ! निर्मल सम्यक्त्व के बिना केवल पात्र दान के प्रभाव से तू यहां उत्पन्न हुआ है, ऐसा समझ। महाबल के भव में तूने हमसे ही तत्वज्ञान प्राप्त कर शरीर छोड़ा था, परन्तु उस समय भी तू सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर सका था, अब हम सम्यक्त्वरूपी अमूल्य निधि को तुझे देने के लिए यहां आये हैं। इसलिए हे आर्य ! आज सम्यग्दर्शन ग्रहण करें। वीतराग सर्वज्ञ देव, आप्त कथित आगम और जीवादि पदार्थों का बड़ी निष्ठा से श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह आठ अंग सहित, आठ मद, छह अनायतन और तीन मूढ़ता रहित होता है। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य ये चार इसके गुण हैं।

इस प्रकार मुनिराज, वज्रजंघ आर्य को समझाकर श्रीमती आर्या को समझाने लगे। हे मातः ! सम्यग्दर्शन के बिना ही यह स्त्री-पर्याय प्राप्त होती है, सम्यग्दृष्टी जीव प्रथम नरक के बिना छह नरकों में, स्त्री पर्याय में, एकेन्द्रिय पर्याय, विकलत्रय पर्याय आदि निंद्य योनियों में उत्पन्न नहीं होते हैं। हे मातः ! तू भी सम्यग्दर्शन धारण कर और इस स्त्री पर्याय से छूटकर क्रम से सप्त परम स्थानों को प्राप्त कर।

दोनों दम्पतियों ने अत्यधिक प्रसन्नचित्त होकर सम्यक्त्व-रत्न को ग्रहण किया। पहले कहे हुए वज्रजंघ पर्याय में आहार दान के समय

जो सिंह, सूकर, वानर और नेवला थे, वे दान की अनुमोदना से वहीं पुरुष पर्याय में जन्मे थे। वे भी इस समय प्रीतिंकर गुरुदेव के मुख से उपदेश सुनकर सम्यग्दर्शन रूपी अमृत को प्राप्त हुए थे। दोनों ही दम्पतियों को दोनों ही मुनिराज ने बार-बार धर्म-प्रेम से स्पर्श किया और आशीर्वाद देते हुए आकाश मार्ग से विहार कर गये। जब वे मुनिराज चले गये तब आर्य वज्रजंघ ने बहुत देर तक उनके वियोग जन्य दुःख का अनुभव किया। अनन्तर उनके गुणों का चिंतवन करते हुए सोचने लगा कि देखो ! महाबल के भव में भी वे स्वयंबुद्ध नामक मेरे गुरु हुए थे और इस भव में सम्यग्दर्शन देकर विशेष गुरु हुए हैं। सचमुच में सिद्धरस तांबा आदि धातुओं को स्वर्ण बना देता है वैसे ही गुरु संगति भी भव्यजनों को शुद्ध सिद्ध बना देती है। गुरु उपदेश रूपी नौका के बिना यह घोर संसार समुद्र नहीं तिरा जाता है। गुरु ही अकारण बन्धु है। इस प्रकार सम्यक्त्व से विशुद्ध उन भोगभूमिज आर्यों ने कल्पवृक्ष के उत्तम भोगों का अनुभव करते हुए और तत्त्वभावना में मन को लगाते हुए तीन पल्य की आयु को समाप्त कर दिया।

वज्रजंघ का जीव ऐशान स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में श्रीधर नाम का ऋद्धिधारी देव हुआ। श्रीमती आर्या भी सम्यक्त्व के प्रभाव से स्त्री पर्याय से छूटकर उसी स्वर्ग में स्वयंप्रभ नाम का उत्तम देव हुआ। सिंह, सूकर, वानर, नकुल के जीव भी उसी स्वर्ग में उत्तम ऋद्धि के धारक देव हो गये। ये वज्रजंघ का जीव भरत क्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव होगा और श्रीमती का जीव राजा श्रेयांस होगा।

सन्तोष कुमार–हे गुरुवर ! मुनियों के उपदेश के सिवाय भोगभूमिज में क्या और भी कोई सम्यक्त्व के कारण हैं ?

मुनिराज–हां, जातिस्मरण हो जाने से, उपदेश श्रवण से, देवर्द्धि आदि देखने से भी सम्यक्त्व प्रगट हो सकता है।

कोई भी सम्यग्दृष्टी जीव मरकर भोगभूमि में नहीं जा सकता।

सम्यग्दृष्टी पात्रदान के प्रभाव से स्वर्ग ही जायेगा। हाँ, यदि किसी ने पहले मनुष्यायु तिर्यंचायु का बन्ध कर लिया अनंतर सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है तब वह जीव नियम से कर्मभूमि का मनुष्य या तिर्यंच न होकर भोगभूमि में ही मनुष्य या तिर्यंचयोनि में जन्म लेगा और वहां से सौधर्म-ईशान स्वर्ग में जन्मेगा।

सन्तोष कुमार–सचमुच में पूर्व जन्म के स्नेह के संस्कार से ही प्रीतिंकर महामुनिराज ने उन भोगभूमिजों को सम्यक्त्व ग्रहण कराया अन्यथा वहां भोगभूमि में वे मुनिराज क्यों जाते ?

मुनिराज–हां सन्तोष कुमार ! स्नेह और वैर दोनों के संस्कार जीवों के कई भवों तक चलते रहते हैं। अतः वैर का संस्कार कभी नहीं बनाना चाहिए।

●●●

मिथ्यात्व और सम्यक्त्व

संतोष कुमार–हे भगवन् ! क्या मिथ्यात्व हिंसादि पापों से भी भयंकर है ?

मुनिराज–हां सन्तोष ! मिथ्यात्व के समान तीनों लोकों में और तीनों कालों में आत्मा का अहित करने वाली कोई भी अन्य वस्तु नहीं है। सुनों ! इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें एक रोमांचकारी कथानक सुनाता हूँ।

श्रीप्रभ नामक पवत पर ध्यान करते हुए प्रीतिंकर मुनिराज को केवलज्ञान प्रकट हो गया और देवों ने आकर गंधकुटी की रचना करके केवलज्ञान की पूजा की। ईशान स्वर्ग के श्रीधर देव ने भी अवधिज्ञान से जान लिया कि हमारे गुरु प्रीतिंकर मुनिराज को केवलज्ञान प्रकट हो चुका है, वह भी उत्तमोत्तम सामग्री लेकर पूजा के लिए वहां आया।

पूजन आदि करके धर्म का स्वरूप सुना, अनंतर प्रश्न किया।

हे भगवन्! महाबल की पर्याय में जो मेरे तीन मंत्री मिथ्यादृष्टी थे, वे इस समय किस गति में हैं ? उस समय सर्वज्ञदेव ने कहा, कि हे भव्य ! उन तीनों में से महामति और संभिन्नमति ये दो मंत्री तो निगोद पर्याय को प्राप्त हो चुके हैं जहां मात्र सघन अज्ञानांधकार ही व्याप्त है। वहां अत्यन्त तृप्त खौलते हुए जल में होने वाली खलबलाहट के समान अनेकों बार जन्म-मरण धारण करने पड़ते हैं। वहां निगोद पर्याय में यह जीव एक श्वास के काल में अठारह बार जन्म-मरण कर लेता है। निगोद से निकलकर पुनः त्रस पर्याय पाना वहुत ही कठिन है। जैसे कि कोई मनुष्य समुद्र में एक राई का दाना डाल दे और हजार वर्ष के बाद उसको ढूंढे तो मिलना कठिन है, वैसे ही निगोद पर्याय से निकलना अत्यन्त कठिन है। तथा शतमति मंत्री मिथ्यात्व के कारण द्वितीय नरक में चला गया है।

उस समय प्रीतिंकर गुरुदेव के वचनों से अत्यन्त तृप्त हुआ वह श्रीधर देव सोचने लगा—अहो ! निगोद पर्याय में जाकर संबोधा भी नहीं जा सकता है। देखो, पांचों इन्द्रियों की प्राप्ति होना कितना कठिन है और ये जीव क्षणिक स्वार्थ में पड़कर मिथ्यात्व से मोहित होकर ऐसी दुर्गति को प्राप्त कर लेते हैं। उस समय उसने द्वितीय नरक में जाकर शतमतिमंत्री के जीव को समझाने का प्रयत्न किया।

देव ने कहा—अरे मूढ़ शतमति ! देख, क्या तू मुझ महाबल को जानता है ? उस भव में तूने मुझे भी मिथ्यात्व का उपदेश दिया था। और उसके फलस्वरूप प्रत्यक्ष में तू इस नरक वेदना को भोग रहा है। अब तू शीघ्र ही सम्यग्दर्शन रूपी रत्न को ग्रहण कर। इस प्रकार देव के बहुत कुछ उपदेश से उस नारकी ने मिथ्यात्व का वमन करके सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर लिया। आयु के अन्त में भयंकर नरक से निकल कर पुष्करद्वीप के पूर्व विदेह में महीधर चक्रवर्ती का पुत्र जयसेन

हुआ। यौवन अवस्था में उसका विवाह हो रहा था, उस समय पुनः श्रीधर देव ने स्वर्ग से आकर उसे समझाया और नरकों के भयंकर दुःख की याद दिलाई जिससे वह जयसेन तत्क्षण ही विषयों से विरक्त हो गया और यमधर मुनिराज के समीप जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। तपश्चरण करते हुए अंत में समाधि पूर्वक प्राण छोड़कर ब्रह्म स्वर्ग में इन्द्र पद को प्राप्त कर लिया। देखो, कहां तो नारकी होना, कहां इन्द्रपद की प्राप्ति होना ? मिथ्यात्व और सम्यक्त्व का यह प्रत्यक्ष फल देखकर हे भव्य जीवो ! धर्म में ही अपनी बुद्धि को स्थिर करो। अनंतर अवधि ज्ञानी इस ब्रह्मेन्द्र ने अपने पूर्वभवों के वृत्तांत को याद कर ब्रह्म स्वर्ग से ईशान स्वर्ग में आकर श्रीधर देव की विशेष रूप से पूजा की। क्योंकि उपकारी के उपकार को न भूलना, उनकी पूजा, भक्ति करना ही विनीत सम्यग्दृष्टि का कर्त्तव्य है।

संतोष कुमार–हे गुरुदेव ! अब मैं सर्वथा ही मिथ्यात्व का त्याग कर रहा हूँ क्योंकि यह महाविष है। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान करना और उनके बताये मार्ग पर चलना ही पाप भीरुता है।

मुनिराज–अनन्तर श्रीधर देव का जीव स्वर्ग से चयकर जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह की सुसीमा नगरी के राजा सुदृष्टि की रानी सुन्दरनंदा के 'सुविधि' नाम का पुत्र हो गया। तरुण होने पर चक्रवर्ती अभयघोष ने अपनी पुत्री मनोरमा का विवाह सुविधि के साथ कर दिया।

श्रीमती का जीव जो कि स्वयंप्रभदेव था, वह स्वर्ग से चयकर राजा सुविधि के 'केशव' नाम का पुत्र हो गया। वज्रजंघ पर्याय में जो प्रियवल्लभा थी, वही इस भव में प्रिय पुत्र हो गया है अतः राजा भी पुत्र मोह में अत्यन्त आसक्त हो गया था। सिंह, सूकर, वानर और नकुल के जीव जो कि उस स्वर्ग में देव हुए थे, वे भी इसी वत्सकावती में उसी के समान विभूति के धारक राजपुत्र हो गये। किसी दिन चक्रवर्ती अभयघोष के साथ इन चारों राजाओं ने भी जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर

ली। किन्तु सुविधि महाराज केशव पुत्र के स्नेह से दीक्षा नहीं ले सके। तब उन्होंने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं को धारण कर उत्कृष्ट श्रावक पद प्राप्त कर लिया। इस प्रकार सम्यग्दर्शन से पवित्र व्रतों से शुद्धि को प्राप्त हुए राजर्षि सुविधि बहुत काल तक श्रेष्ठ मोक्षमार्ग की उपासना करते रहे। अनन्तर जीवन के अंत में परिग्रह रहित दिगम्बर दीक्षा को लेकर सुविधि महाराज ने समाधि पूर्वक शरीर का त्याग कर अच्युत स्वर्ग में इंद्र पद को प्राप्त कर लिया।

सुविधि के पुत्र केशव ने भी दीक्षा लेकर समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर उसी अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र पद को प्राप्त कर लिया। सिंह आदि के जीव जो चार राजा चक्रवर्ती के साथ दीक्षित हुए थे, वे भी उसी अच्युत स्वर्ग में सामानिक जाति के देव हो गये। अनेकों ऋद्धियों से विभूषित वह अच्युतेन्द्र, प्रतीन्द्र और सामानिक देवों के साथ उत्तमोत्तम सुखों का अनुभव करता हुआ सदैव सम्यक्त्व की महिमा का वर्णन करता रहा था और तत्त्वज्ञान के आनन्द को प्राप्त होता रहता था।

सन्तोष कुमार–हे भगवन् ! मिथ्यात्व का फल जितना अधिक दुःखावह है, उतना ही सम्यक्त्व का फल अचिन्त्य और अद्भुत है।

●●●

चक्रवर्ती वज्रनाभि का वैराग्य

संतोष कुमार–हे भगवन् ! वज्रनाभि चक्रवर्ती कौन थे और आगे उन्होंने कब मोक्ष प्राप्त किया है ?

मुनिराज–जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश है। उसकी पुण्डरीकिणी नगरी में राजा वज्रसेन राज्य करते थे जो कि तीर्थंकर थे। उनकी रानी का नाम श्रीकांता था।

सुविधि राजर्षि जो कि अच्युतेन्द्र हुए थे, उनका जीव स्वर्ग से चयकर श्रीकांता रानी के 'वज्रनाभि' नाम का पुत्र हुआ। पहले कहे हुए सिंह, सूकर, वानर और नकुल के जीव भी जो कि अच्युत स्वर्ग में सामानिक देव हुए थे, वे उन्हीं रानी से क्रमशः विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित नाम के पुत्र हो गये। वज्रजंघ की पर्याय में जो मतिवर आदि मंत्री के जीव थे, वे राजा वज्रजंघ के मरने के बाद दीक्षा लेकर अंत में मरकर ग्रैवेयक में अहमिंद्र हुए थे। वे भी उन्हीं श्रीकांता रानी के क्रमशः सुबाहु, महाबाहु, पीठ और महापीठ नाम के पुत्र हो गये। श्रीमती का जीव केशव जो कि अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुआ था, वह भी वहां से चयकर उसी नगरी में कुबेरदत्त वणिक् की अनंतमती भार्या से 'धनदेव' नाम का पुत्र हो गया जो कि चक्रवर्ती वज्रनाभि का गृहपति रत्न हुआ है।

किसी समय तीर्थंकर वज्रसेन को वैराग्य होते ही लौकांतिक देवों ने आकर प्रभु की पूजा-स्तुति करके दीक्षा की अनुमोदना की। राजा वज्रसेन ने भी युवा पुत्र वज्रनाभि को समस्त पृथ्वी का राज्यभार सौंप पट्ट बांध करके मुकुटबद्ध राजाओं से नमस्कार कराते हुए ऐसा आशीर्वाद दिया 'तू बड़ा भारी चक्रवर्ती हो' और आप देवों द्वारा आनीत पालकी में बैठकर आम्रवन में पहुंचे जहां एक हजार राजाओं के साथ स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली।

इधर राजा वज्रनाभि की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ और उधर पिता वज्रसेन को केवलज्ञान प्रगट हो गया था। राजा वज्रनाभि चक्ररत्न से छह खंड वसुधा को जीतकर छियानवे हजार रानियों से युक्त एकछत्र साम्राज्य का उपभोग कर रहे थे। किसी समय पिता वज्रसेन तीर्थंकर से धर्मोपदेश सुनकर सम्पूर्ण साम्राज्य को जीर्ण-तृण के समान मानकर एक क्षण में त्याग कर दिया और सोलह हजार मुकुटबद्ध राजाओं, एक हजार पुत्रों, आठ भाइयों और धनदेव के साथ-साथ मोक्ष

प्राप्ति के उद्देश्य से पिता वज्रसेन तीर्थंकर के समवसरण में ही जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

तेरह प्रकार का चारित्र, बारह प्रकार का तप, बाइस परिषह आदि उत्तर गुणों का पालन करते हुए उन मुनिराज ने तीर्थंकर के पादमूल में सोलह कारण भावनाओं का चिंतवन किया था। सम्यग्दर्शन को विशुद्धि रखना, विनय से सम्पन्न होना, शीलव्रतों में अतिचार न लगाना, नित्य ही ज्ञानोपयोग में लीन रहना, संसार से भीरुता, शक्ति के अनुसार तप करना, ज्ञान और संयम के साधनाभूत पदार्थों का त्याग (दान) करना, साधुओं के व्रतादि में विघ्न आने पर उन्हें दूर करना, साधुओं की वैयावृत्ति करना, अरहंत भगवान् को भक्ति, आचार्य की भक्ति, बहुश्रुत मुनियों की भक्ति, और प्रवचन की भक्ति करना, आवश्यक क्रियाओं का पूर्ण रूप से पालन करना, जैन धर्म की प्रभावना करना तथा धर्मात्माओं में अखंड प्रेम रखना। इस प्रकार की सोलह भावनाओं का उत्कृष्ट रीति से चिंतन करते हुए उन धीर-वीर वज्रनाभि मुनिराज ने तीन लोक में क्षोभ उत्पन्न करने वाली तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध कर लिया।

उन मुनिराज को ऋद्धियों की बिल्कुल भी इच्छा नहीं थी फिर भी अणिमा, महिमा आदि गुणों सहित विक्रिया ऋद्धि प्रगट हो गई। कोष्ठ बुद्धि, बीज बुद्धि आदि बुद्धि ऋद्धियां भी उत्पन्न हो गईं। जगत् का हित करने वाली जल्लौषधि, सर्वौषधि आदि ऋद्धियों ने भी उनका वरण किया, यद्यपि मुनिराज ने घी, दूध आदि रस का त्याग कर दिया था तो भी घी, दूध आदि को झराने वाली अनेकों रस ऋद्धियां भी प्रगट हुई थीं। वे बल ऋद्धि के प्रभाव से कठिन से कठिन परिषह भी सह लेते थे।

अक्षीण ऋद्धि के बल से वे जिस दिन घर आहार लेते थे, उस दिन उस घर में अन्नं अक्षय हो जाता था—चक्रवर्ती के कटक को भोजन

कराने पर भी वह भोजन क्षीण नहीं होता था। इस प्रकार वे मुनिराज सदैव छठे-सातवें गुणस्थान में चढ़ते-उतरते रहते थे।

परिणामों की विशुद्धि से वे सातिशय अप्रमत्त नामक सातवें गुणस्थान से आगे बढ़कर उपशम श्रेणी में चढ़ गये अर्थात् आठवें, नवमें, दशवें और ग्यारहवें गुणस्थान में पहुंच गये। अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर वे मुनि नीचे उतर कर पुनः स्वस्थान अप्रमत्त नामक सातवें गुणस्थान में स्थित हो गये। उसका खास कारण यह है कि ग्यारहवें गुणस्थान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त ही है। तत्पश्चात् आयु के अन्त में श्रीप्रभ पर्वत पर पहुंच कर वज्रनाभि महामुनि ने प्रायोपगमन संन्यास ग्रहण कर लिया। वे उस समय स्वयं तथा पर से किंचित् भी शरीर का उपचार नहीं करते थे न कराते ही थे। उस समय उनके शरीर में चर्म और हड्डी मात्र ही शेष रह गयी थी तो भी वे निश्चल चित्त निराकुलता से ध्यानस्थ थे।

वे द्वितीय बार उपशम श्रेणी पर आरूढ़ हुए और पृथक्त्व वितर्क नामक शुक्लध्यान को पूर्ण कर उत्कृष्ट समाधि को प्राप्त हुए। अंत में उपशांतमोह नामक ग्यारहवें गुणस्थान में प्राण छोड़कर सर्वार्थसिद्धि पहुंचे और वहां अहमिन्द्र पद को प्राप्त हुए। यह सर्वार्थसिद्धि नाम का विमान लोक के अंत भाग से बारह योजन नीचा है। सबसे श्रेष्ठ है इसकी लम्बाई-चौड़ाई और गोलाई जम्बूद्वीप के बराबर एक लाख योजन है। चूंकि इस विमान में उत्पन्न होने वाले के सभी मनोरथ अनायास ही सिद्ध हो जाते हैं अतः इसका 'सर्वार्थसिद्धि' यह नाम सार्थक है। यहां पर जन्म लेने वाले देव नियम से एक मनुष्य भव पाकर कर्मों का नाश कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। वज्रनाभि के वे विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित, सुबाहु, महाबाहु, पीठ और महापीठ ये आठों भाई तथा धनदेव गृहपति ये नौ मुनिराज भी अपने पुण्य के प्रभाव से उसी सर्वार्थसिद्धि में वज्रनाभि के समान ही अहमिंद्र हुए।

उन अहमिंद्रों के स्त्री समागम के बिना भी होने वाला सुख,

स्त्री-समागम सुख की अपेक्षा अनंतगुणा था। पाप कर्मों के उत्कृष्ट फल सप्तम पृथ्वी के नारकियों में और पुण्य कर्मों का उत्कृष्ट फल सर्वार्थसिद्धि के अहमिंद्रों के जानना चाहिए।

ये वज्रनाभि अहमिंद्र मनुष्य लोक में प्रथम तीर्थंकर के रूप में अवतरित हुए हैं और युगस्रष्टा, ब्रह्मा, कहलाये हैं।

संतोष कुमार–हे गुरुदेव ! आज मुझे वृषभदेव के भवान्तर सुनकर बहुत ही हर्ष हुआ है, अब मैं पुराणों का स्वाध्याय अवश्य ही करूंगा।

●●●

भगवान् का दशम अवतार

संतोष कुमार–हे गुरुदेव ! भगवान् को दशावतारी क्यों कहते हैं ?

मुनिराज–हां सुनो, तुम्हें मैं दशावतार के बारे में स्पष्टीकरण करता हूं।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी आर्य खण्ड में भोगभूमि का तृतीय काल समाप्त होने वाला था कि चौदह कुलकरों में अन्तिम कुलकर श्री नाभिराज हुए थे। उस समय इन्द्र ने उत्तम कुल में जन्मी कन्या मरुदेवी के साथ नाभिराज का विवाहोत्सव बड़ी विभूति के साथ कराया था। मरुदेवी और नाभिराज से अलंकृत पवित्र स्थान में उनके पुण्य के द्वारा बार-बार बुलाये हुए इन्द्र ने एक नगरी की रचना की। इन्द्र की आज्ञा से बड़े-बड़े उत्साही देवों ने उसे स्वर्गपुरी के समान अत्यन्त सुन्दर बनाई और उसका अयोध्या नाम रखा। अनन्तर इन्द्र ने शुभ दिन, शुभ मुहूर्त, शुभ योग और शुभ लग्न में हर्षित होकर उस नगरी में पुण्याहवाचन किया। उसी समय आनन्दित हो नाभिराज ने मरुदेवी के साथ अयोध्या नगरी में निवास करना प्रारम्भ किया। 'इन दोनों के सर्वज्ञ ऋषभदेव

पुत्र जन्म लेंगे' यह समझकर इन्द्र ने अभिषेक पूर्वक उन दोनों की महती पूजा की।

अनन्तर छह महीने बाद भगवान् वृषभदेव वहां स्वर्ग से अवतार लेंगे, ऐसा जानकर इन्द्र की आज्ञा से प्रेरित कुबेर ने आकाश से रत्नों की वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया। वह इन्द्रनीलमणि, हरिन्मणि, पद्मरागमणि आदि की वर्षा ऐसी शोभित हो रही थी कि मानो वृषभदेव की सम्पत्ति उत्सुकता के कारण उनके आने के पहले ही यहां आ गई हो। किसी दिन माता मरुदेवी राजमहल में कोमल शय्या पर सो रही थीं। उन्होंने रात्रि के पिछले प्रहर में ऐरावत हाथी, श्वेत बैल आदि सोलह स्वप्न देखे। प्रातःकाल के बाजों की ध्वनि और मंगल गीतों से वे जग गईं। हर्षित हुई मरुदेवी मंगल स्नान कर प्रातःकालीन चर्या से निवृत्त होकर महाराज नाभिराज के पास पहुंचीं और विनय सहित स्वप्नों का निवेदन किया। महाराज नाभिराज ने भी अवधिज्ञान से इन स्वप्नों के फल को जानकर स्पष्टतया फल बताया और कहा कि देवी ! तुम्हारे गर्भ में तीन लोक के नाथ तीर्थंकर का जीव आ गया है। उस समय मरुदेवी हर्षातिरेक से रोमांचित हो गई थीं। जब अवसर्पिणी काल के तीसरे सुषमा-दुषमा नामक काल में चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष, आठ माह और एक पक्ष बाकी रह गया था, तब आषाढ़ कृष्णा द्वितीया के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में वज्रनाभि अहमिन्द्र सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर मरुदेवी के गर्भ में अवतीर्ण हुआ और वहाँ सीप के संपुट में मोती के समान सब बाधाओं से निर्मुक्त हो स्थित हो गया।

उसी समय सभी इन्द्र अपने-अपने यहां होने वाले चिन्हों से भगवान् का गर्भावतार जानकर वहां आये। नगरी की प्रदक्षिणा देकर माता-पिता को नमस्कार किया। महाराजा नाभिराज का महल देवों से खचाखच भर गया। गर्भकल्याणक महोत्सव मनाकर वे देव स्व स्व स्थान चले गये। इन्द्र की आज्ञा से दिक्कुमारी देवियाँ दासी के समान माता की सेवा में तत्पर थीं। श्री ह्री आदि देवियों ने स्वर्ग से लाये हुए पवित्र

पदार्थों के द्वारा माता का गर्भ शोधन किया था। उस समय कोई देवियाँ माता के समक्ष आठ मंगल द्रव्य धारण करतीं, कोई शय्या बिछातीं, कोई पैर दबातीं, कोई मंगल स्तोत्र सुनाती थीं। कितनी ही देवियाँ सायंकाल के समय माता की आरती उतारती थीं। वे देवियाँ नृत्य, गीत आदि महोत्सवों से माता का मनोरंजन किया करती थीं, उनके गीत तीर्थंकर अरहंत, सिद्ध आदि की स्तुति रूप या माता की स्तुति रूप ही रहते थे। जिन बालक के गर्भ में स्थित होने से माता को रंच मात्र भी कष्ट नहीं हुआ था। न तो माता का उदर ही वृद्धिंगत हुआ और न मुख पर पीलापन ही आया था।

नौवाँ महीना निकट आने पर वे देवियां अनेक काव्यगोष्ठियों, गूढ़ प्रश्नों द्वारा मरुदेवी को प्रसन्न करने लगीं। एक देवी ने पूछा—हे मातः ! तुम्हारे गर्भ में कौन है ? ऐसी कौन-सी वस्तु है जो तुम्हारे पास नहीं है ? बहुत खाने वाले को कौन-सी वस्तु मारती है ? इन तीनों का उत्तर ऐसा दीजिए कि जिसमें अन्त का व्यंजन एक-सा हो। माता ने कहा, 'तुक्' 'शुक्' 'रुक्' अर्थात् हमारे गर्भ में पुत्र है। हमारे समीप शोक नहीं है, अधिक खाने वाले को रोग मार डालता है। वे देवियाँ अनेकों अलंकार भरे स्तोत्रों से माता की स्तुति करती थीं।

मुदेस्तु वसुधारा ते देवताशीस्ततांबरा।
स्तुतादेशे नभाताधा वशीशे स्वस्वनस्तसु[1] ॥२५४॥

---

१. इस श्लोक में चित्रालंकार है। यह अर्धभ्रम श्लोक है इस श्लोक में तृतीय और चतुर्थ चरण के अक्षर प्रथम तथा द्वितीय चरण में आ गये हैं। इसके लिखने का तरीका यह है—

मु	दे	स्तु	व	सु	धा	रा	ते
दे	व	ता	शी	स्त	ता	म्ब	रा
स्तु	ता	दे	शे	न	भा	ता	धा
व	शी	शे	स्व	स्व	न	स्त	सु

अर्थ–जिसकी आज्ञा अत्यन्त प्रशंसनीय है और जो जितेन्द्रिय पुरुषों में अत्यन्त श्रेष्ठ है, ऐसी हे मातः ! देवताओं के आशीर्वाद से आकाश को व्याप्त करने वाली अत्यन्त सुशोभित, जीवों की दरिद्रता को नष्ट करने वाली और नम्र होकर आकाश से पड़ती हुई यह रत्नों की वर्षा तुम्हारे आनन्द के लिए हो। इत्यादि अनेकों अलंकारों से सहित स्तोत्रों से वे देवियाँ सदैव माता की स्तुति करते हुए अनेकों गूढ़ प्रश्नों के उत्तर तत्क्षण प्राप्त कर लेती थीं। इन्द्र के द्वारा भेजी गई इन्द्राणी भी अपने पापों का नाश करने के लिए अप्सराओं के साथ गुप्त रूप से महासती जिन माता की सेवा किया करती थीं।

अनन्तर प्राची दिशा के समान मरुदेवी ने चैत्रकृष्णा नवमी के दिन सूर्योदय के समय त्रैलोक्य तेजोपुंज जिन बालक रूपी सूर्य को जन्म दिया। तत्क्षण ही देवों के यहाँ बिना बजाये बाजे उच्च ध्वनि से बजने लगे। तीन लोक में सर्वत्र महामंगलमय वातावरण हो गया। सौधर्म इन्द्र ने असंख्य देवों के साथ ऐरावत हाथी पर चढ़कर अयोध्या नगर में आकर नगरी की तीन प्रदक्षिणा दी। शची ने प्रसूति गृह में प्रवेश कर प्रदक्षिणा आदि विधि से माता और पुत्र की स्तुति, भक्ति करके माता को मायामयी नींद से युक्त कर, पास में अन्य मायामयी बालक सुलाकर वह इन्द्राणी जिन शिशु सूर्य को बड़े ही आदर से ले आई और इन्द्र के कर कमलों में सौंप दिया। इन्द्र ने सुमेरु पर्वत पर ले जाकर पांडुक शिला पर तत्काल जन्मे हुए जिन बालक का स्वर्णमय हजारों घड़ों से अभिषेक महोत्सव मनाया।

इसके पढ़ने का तरीका यह है कि प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ खाने के प्रथम-प्रथम अक्षर पढ़कर नीचे से अंतिम खाने के चारों अक्षर पढ़े। पुनः द्वितीय खाने के चारों अक्षर पढ़कर नीचे से सातवें खाने के चारों अक्षर पढ़े। पुनः तृतीय खानों में चारों अक्षर पढ़कर नीचे से छठे खानों के चारों अक्षर पढ़े। पुनः चतुर्थ खाने के चारों अक्षण पढ़कर पंचम खानों को पढ़े।

अनन्तर करोड़ों स्तुतियों से स्तुति करते हुए कहा कि—हे भगवन्, आप दशावतार—चरम-दस अवतारों में अन्तिम परमौदारिक शरीर को धारण करने वाले नाभिराज के पुत्र वृषभदेव हुए हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।

दस अवतार का स्पष्टीकरण

हे नाथ ! आप महाबल के धारक हैं अथवा इस भव से पूर्व दशवें भव में महाबल विद्याधर थे, आपको नमस्कार हो। आप ललितांग—सुन्दर शरीर के धारक हैं अथवा नौवें भव पूर्व में ऐशान स्वर्ग के ललितांग देव थे। अतः आपको नमस्कार हो। आप धर्मतीर्थ प्रवर्तक ऐश्वर्यशाली वज्र के समान मजबूत जंघा धारक वज्रजंघ हैं अथवा आठवें भव में वज्रजंघ राजा थे अतः आपको नमस्कार हो। आप आर्य अर्थात् पूज्य हैं अथवा सातवें भव में भोगभूमिज आर्य थे। इसलिए आपको नमस्कार हो। आप श्रीधर-दिव्य शोभा युक्त हैं अथवा छठे भव में 'श्रीधर' देव थे, आपको नमस्कार हो। आप सुविधि-उत्तम भाग्यशाली हैं अथवा पाँचवें भव में 'सुविधि' राजा थे अतः आपको नमस्कार हो। आप अच्युतेंद्र अविनाशी स्वामी हैं अथवा चौथे भव में अच्युत स्वर्ग के इन्द्र थे अतः आपको नमस्कार हो। आपका शरीर वज्रवत् स्थिर है आप वज्रनाभि है अथवा तीसरे भव में वज्रनाभि चक्रवर्ती थे ऐसे आपको नमस्कार हो। आप सर्वार्थसिद्धि के नाथ—सब पदार्थों की सिद्धि के स्वामी तथा सर्व प्रयोजनों की सिद्धि को प्राप्त हैं अथवा दूसरे भव में सर्वार्थसिद्धि विमान के स्वामी थे अतः आपको नमस्कार हो। हे नाथ! आप दशावतारचरम अर्थात् सांसारिक पर्यायों में अन्तिम अथवा ऊपर कहे हुए महाबल आदि दश अवतारों में अन्तिम परमौदारिक शरीर धारक तीर्थंकर वृषभदेव हैं। इसलिए आपको नमस्कार हो।

यहां श्लेषालंकार का आश्रय लेकर श्री जिनसेनाचार्य ने भगवान् वृषभदेव के दश अवतारों का वर्णन करके भगवान् को दशावतारी सिद्ध

किया है। उसका अभिप्राय यह है कि अन्य मत में विष्णु के दश अवतार माने हैं। यहां आचार्य ने वृषभदेव के दश अवतार बताकर उन्हें ही श्री विष्णु सिद्ध किया है।

इस प्रकार से करोड़ों स्तुतियों से मुखरित इन्द्र भगवान् को वापस लाकर बड़े ही उत्सव के साथ माता-पिता को सौंप दिया और अयोध्या नगरी में भी तांडव नृत्य आदि पूर्वक महान् महोत्सव करके बहुत से देवों को जिन बालक के साथ क्रीड़ा हेतु छोड़कर स्वयं स्व-स्थान को चले गये।

संतोष कुमार–हे गुरुदेव ! भगवान् के दश अवतार का रहस्य समझ लिया, अब मैं जन्माभिषेक के विशेष प्रकरण का स्वाध्याय अवश्य करूंगा।

मुनिराज–ठीक है, अवश्य पढ़ो। ये पुराण बोधि के खजाने हैं।

●●●

युगस्रष्टा आदिब्रह्मा

संतोष कुमार–हे भगवन् ! आदिनाथ को युगस्रष्टा क्यों कहते हैं ? जैन सिद्धान्त में तो ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता नहीं माना है।

मुनिराज–तुम्हारा प्रश्न बहुत ही अच्छा है ! ध्यान देकर सुनो, भगवान आदिनाथ कैसे युगस्रष्टा कहलाये ?

भगवान् वृषभदेव के शरीर का वर्ण तपाये हुए स्वर्ण सदृश था और इतना सुन्दर था कि इन्द्र ने एक हजार नेत्र बना लिये और प्रभु के रूप का अवलोकन किया, फिर भी तृप्त नहीं हुआ। प्रभु के शरीर की अवगाहना पांच सौ धनुष (२००० हाथ प्रमाण) थी, और आयु चौरासी लाख पूर्व[1] वर्ष की थी। वे भगवान् सरस्वती के एकमात्र स्वामी थे इसलिए उन्हें सम्पूर्ण वाङ्मय प्रत्यक्ष हो गये थे और इसीलिए वे समस्त

लोक के गुरु हो गये थे। देवों द्वारा लाये गये दिव्य भोगोपभोग सामग्री का अनुभव करते हुए भगवान् का शैशव काल व्यतीत हो गया।

किसी समय महाराजा नाभिराज वृषभदेव के समीप आकर बोले—कि हे देव ! यद्यपि मैं यथार्थ में आपका पिता नहीं हूँ। निमित्त मात्र से ही पिता हूँ। फिर भी मैं एक अभ्यर्थना करता हूँ कि आप इस समय संसार की-सृष्टि की ओर अपनी बुद्धि लगाइये, क्योंकि आप आदिपुरुष हैं, सारी प्रजा आपका ही अनुसरण करेगी। अतः इष्ट कन्या के साथ विवाह कर लीजिए। जिससे प्रजा की संतति का उच्छेद न होकर धर्म की संतति चलती रहे। ऐसा सुनकर भगवान् ने हँसते हुए 'ओम्' कहकर स्वीकार कर लिया।

महाराज नाभिराज ने इन्द्र की अनुमति से सुशील और सुन्दर कच्छ महाकच्छ राजा की बहनें यशस्वती और सुनंदा, इन दो कन्याओं के साथ प्रभु का विवाह कर दिया, विवाहोत्सव में इन्द्रादि देवों ने और प्रजा ने जो आनन्द उत्सव मनाया था उसका यहां क्या कहना ? सुख पूर्वक बहुत कुछ काल के व्यतीत हो जाने पर रानी यशस्वती ने चक्रवर्ती को जन्म दिया तथा क्रम से अन्य भी निन्यानवे पुत्रों को जन्म दिया। सुनंदा रानी ने कामदेव बाहुबलि और सुन्दरी कन्या को जन्म दिया। महाराजा नाभिराज इन सब पुत्र, पुत्रवधू, पौत्र, पौत्रियों से घिरे हुए अतिशय प्रसन्न रहते थे। भगवान् वृषभदेव की वज्रनाभि पर्याय में जो सुबाहु, महाबाहु, पीठ, महापीठ, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित भाई थे, वे ही भगवान् के क्रमशः भरत, बाहुबलि, वृषभसेन, अनन्तविजय, अनन्तवीर्य, अच्युत, वीर और वरवीर नाम के पुत्र हो गये। ये सभी मोक्षगामी थे।

---

१. ८४००००० को ८४००००० से गुणा करने पर पूर्व बनता है। पूर्व = ७०५६०००००००००० (महापुराण पर्व 3, श्लोक 218)

विद्यादान

किसी समय भगवान सिंहासन पर सुख से बैठे थे कि उन्होंने अपना चित्त कला और विद्याओं के उपदेश देने में लगाया। उसी समय मांगलिक वेषभूषा से युक्त ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों कन्यायें प्रभु के पास आकर नमस्कार करने लगीं। प्रभु ने बड़े प्रेम से उन्हें गोद में बिठा लिया और बार-बार उन पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया। और कहा कि हे पुत्रियों ! विद्या ग्रहण करने में प्रयत्न करो, क्योंकि विद्या ग्रहण का यही काल है। भगवान् ने सुवर्ण के विस्तृत पट्टे पर अपने चित्त में स्थित श्रुत देवता को स्थापित किया। अनन्तर 'सिद्धं नमः' मंगलाचरण पूर्वक ब्राह्मी को दाहिने हाथ से 'अ आ इ ई' आदि वर्णमाला लिखकर उन्हें लिपि विद्या का उपदेश दिया और बायें हाथ से इकाई, दहाई आदि अंक लिखकर सुन्दरी को अंक विद्या का उपदेश दिया। उन पुत्रियों ने पिता के मुख से क्रमशः समस्त वाङ्मय का अध्ययन कर लिया।

जगद्गुरु भगवान् ने भरत आदि पुत्रों को भी अनेक शास्त्र पढ़ाये। भरत को अर्थशास्त्र और नृत्य शास्त्र पढ़ाया, वृषभदेव को गन्धर्वशास्त्र, अनन्तविजय को चित्रकला शास्त्र, अनन्तवीर्य को सूत्रधार की विद्या तथा मकान बनाने की विद्या का उपदेश दिया। बाहुबलि को कामनीति, स्त्री-पुरुष के लक्षण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, घोड़ा, हाथी आदि के लक्षण जानने के तन्त्र, रत्न परीक्षा आदि अनेकों शास्त्र पढ़ाये। अधिक कहने से क्या ? लोक में उपकारी जितने भी शास्त्र हैं, भगवान् वृषभदेव ने अपने सभी पुत्रों को सभी पढ़ाये थे। यह उपर्युक्त कथन उन-उन विषय की मुख्यता की अपेक्षा है।

इस प्रकार अनेक सुखों का अनुभव करते हुए भगवान् का बीस लाख पूर्व वर्षों का कुमारकाल बीत गया। इसी बीच में काल के प्रभाव से महौषधि, दीप्तौषधि, कल्पवृक्ष शक्तिहीन हो गये। बिना बोये उत्पन्न धान्य भी अत्यल्प रह गये। तब व्याकुलचित्त हुई प्रजा महाराजा

नाभिराज की शरण में आई। नाभिराज ने उन्हें वृषभदेव के समीप भेज दिया। प्रजा आकर प्रभु को नमस्कार कर प्रार्थना करने लगी– भगवन्! बढ़ती हुई भूख-प्यास की बाधाओं से हम लोख दुःखी हो रहे हैं, हमें अपने जीवित रहने का उपाय बतलाइये, हम लोगों पर प्रसन्न होइये। प्रजा के दीन वचनों को सुनकर दयार्द्रचेता भगवान् ने विचार किया कि पूर्व और पश्चिम विदेह क्षेत्र में जो स्थिति वर्तमान में है वही स्थिति आज यहां प्रवृत्त करना योग्य है इत्यादि सोचकर प्रजा को आश्वासन दिया।

भगवान् के स्मरण मात्र से ही तत्क्षण देवों सहित इन्द्र वहां आया और शुभ दिन, शुभ नक्षत्रादि मुहूर्त में सर्वप्रथम मांगलिक कार्यरूप अयोध्यापुरी के बीच में जिनमन्दिर का निर्माण किया। चारों दिशाओं में भी जिनमन्दिर का निर्माण किया। अनन्तर कौशल आदि महादेश, अयोध्या आदि नगर, अंग, बंग, कुरुजांगल, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, केरल, कर्णाट, आन्ध्र आदि देशों की रचना की। अच्छे ढंग से मकान आदि बनाकर उन स्थानों में प्रजा को बसाकर कृतकृत्य होता हुआ इन्द्र प्रभु की आज्ञा लेकर स्वर्ग चला गया।

आजीविका का उपदेश

भगवान् ने प्रजा की आजीविका के लिए असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छह क्रियाओं का उपदेश दिया। उस समय भगवान् सरागी (गृहस्थ) थे, वीतरागी नहीं थे। उसी समय आदि ब्रह्मा भगवान् ने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तीन वर्णों की स्थापना की। उस समय जितने पाप रहित आजीविका के उपाय थे, वे सब भगवान् की सम्मति से प्रवृत्त हुए थे, सो ठीक है क्योंकि सनातन ब्रह्मा भगवान् वृषभदेव ही थे। चूँकि युग के आदि ब्रह्मा भगवान वृषभदेव ने इस प्रकार कर्मयुग का प्रारम्भ किया था। इसलिए पुराण पुरुष उन्हें कृतयुग नाम से जानते हैं। कृतकृत्य भगवान् वृषभदेव आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा के दिन

कृतयुग का प्रारम्भ करके प्रजापति, युगस्रष्टा आदिब्रह्मा, विधाता आदि कहलाने लगे।

अनन्तर सुखपूर्वक रहते हुए कुछ दिन बाद नाभिराज आदि को लेकर बड़े-बड़े राजाओं ने और इन्द्रादि देवों ने मिलकर अतीव वैभव के साथ भगवान् का 'सम्राट्' पद पर अभिषेक किया। भगवान् राजाधिराज होकर समस्त प्रजा का पुत्रवत् पालन कर रहे थे। भगवान् ने हरि, अकंपन, काश्यप और सोमप्रभ इन चार महाभाग्यशाली क्षत्रियों को बुलाकर उनका राज्याभिषेक कर उन्हें महामांडलीक राजा बनाया। 'सोमप्रभ' कुरुदेश के राजा कुरुवंश, 'हरि' हरिवंश शिरोमणि, 'अकंपन' नाथवंशी, और 'काश्यप' भगवान् से मघवा नाम प्राप्त कर उग्रवंश के मुख्य राजा हुए। भगवान् ने इक्षुरस के संग्रह का उपदेश दिया था। इसलिए वे इच्छ्वाकुवंशी कहलाये। इस प्रकार भगवान् स्रष्टा, विधाता, ब्रह्मा आदि अनेक नामों से पुकारे जाने लगे।

अन्य मतावलम्बी ईश्वर को सारे जगत् की सृष्टि–रचना का कर्त्ता–बनाने वाला मानते हैं। अर्थात् वे कहते हैं कि भगवान् चेतन, अचेतन आदि सभी सृष्टि को पैदा करने वाले हैं। किन्तु यह बात सर्वथा अघटित है। जैनसिद्धान्त में तो मात्र वृषभदेव को कर्मभूमि के प्रारम्भ में आजीविका के साधन आदि क्रियाओं का उपदेशक और विदेहक्षेत्रवत् वर्ण व्यवस्था का व्यवस्थापक माना गया है। किन्तु सृष्टि का कर्त्ता स्रष्टा नहीं।

संतोष कुमार–भगवन् ! इस स्पष्टीकरण से मुझे बहुत ही संतोष हुआ है। नमोऽस्तु ! भूयात् पुनर्दर्शनम् !

●●●

रंग में भंग

संतोष कुमार–गुरुदेव ! जब तीर्थंकर भगवान् निश्चित ही उसी भव से मोक्ष प्राप्त करने वाले हैं, पुनः दीक्षा ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है ? अथवा जब केवलज्ञान होने वाला है, ऐसा समझ कर उसी समय दीक्षा क्यों नहीं लेते ? पहले से क्यों लेते हैं ?

मुनिराज–ऐसी बात नहीं, कर्मों का नाश करने के लिए उन्हें भी तपश्चर्या करना अनिवार्य है। देखो, आदि ब्रह्मा भगवान् आदिनाथ ने भी दीक्षा ग्रहण करके हजार वर्ष तक तपश्चरण किया था।

संतोष कुमार–गुरुदेव ! मुझे आदिनाथ भगवान् की दीक्षा का प्रकरण सुनाओ।

मुनिराज–अच्छा संतोष कुमार ! सुनो।

किसी एक समय हजारों राजाओं से सेवित भगवान् वृषभदेव राज्य सिंहासन पर विराजमान थे। उस समय भगवान् की सेवा के लिए इन्द्र स्वयं ही अप्सराओं और बहुत से देवों के साथ उत्तम-उत्तम पूजन की सामग्री लेकर वहां आया। भक्ति में विभोर इन्द्र ने भगवान् की आराधना करने की इच्छा से अप्सराओं का नृत्य कराना प्रारम्भ किया। 'भगवान् राज्य से किस प्रकार विरक्त होंगे' यह विचार कर इन्द्र ने एक ऐसे पात्र को नियुक्त किया जिसकी आयु अत्यन्त क्षीण हो चुकी थी। वह सुन्दरी नीलांजना नाम की देवनर्तकी रस, भाव और लय सहित नृत्य कर रही थी कि इतने में ही 'आयुरूपी दीपक के क्षय हो जाने से वह अदृश्य हो गई।' उसके नष्ट होते ही इन्द्र ने रस भंग के भय से उस स्थान पर उसी समान शरीर वाली.दूसरी देवी खड़ी कर दी, जिससे नृत्य ज्यों का त्यों चलता रहा। यद्यपि दूसरी देवी के खड़ी हो जाने पर वही मनोहर स्थान था और वहीं नृत्य का परिक्रम था, तथापि भगवान् ने उसी समय उसके स्वरूप का अन्तर जान लिया।

तदनंतर भोगों से विरक्त तथा अत्यन्त संवेग और वैराग्य भावना को प्राप्त हुए भगवान् मन में सोचने लगे–

बड़े आश्चर्य की बात है कि यह जगत् विनश्वर है, लक्ष्मी बिजली के समान चंचल है। यौवन, ऐश्वर्य, आरोग्य आदि सभी चलाचल है। इस जीव ने नरकों में महान् दुःख भोगे हैं। यदि उनका स्मरण भी हो जावे तो ऐसा कौन है कि ज़ो इन भोगों की इच्छा करेगा? इत्यादि रूप में चतुर्गति के दुःखों का विचार करते हुए भगवान् ने यह विचार किया कि इन्द्र ने जो यह नीलांजना का नृत्य कराया है, उस बुद्धिमान् ने सोच-समझकर मेरे बोध के लिए ही ऐसा किया है। क्षणभंगुर रूप और यौवन धोखा देने वाला है। अतः इस रूप को धिक्कार ! ऐसा विचार करते हुए भगवान् विशुद्धि को प्राप्त हो गये।

उसी समय इन्द्र ने अवधिज्ञान से भगवान् के वैराग्य को जान लिया और उसी समय प्रभु के तप-कल्याण की पूजा के लिए लौकान्तिक ब्रह्मलोक से उतरे। ये लौकान्तिक देव देवों में उत्तमदेवर्षि कहलाते हैं। ये एक भवावतारी होते हैं और अतिशय विरक्तमना होने से भगवान् के दीक्षाकल्याणकमें ही आते हैं। उन देवों ने प्रथम ही भगवान् के श्री चरणों में पुष्पांजलि अर्पण करके कल्पवृक्ष के पुष्पों से चरणों की पूजा की और फिर अनेकों स्तोत्रों से प्रभु की स्तुति करते हुए उनके वैराग्य की प्रशंसा करने लगे। हे देव ! आप स्वयं प्रबुद्ध हैं। धर्मरूपी हाथ का सहारा देकर हम लोगों का शीघ्र ही उद्धार कीजिए और इस युग की आदि में मोक्षमार्ग को प्रगट कीजिए। इस प्रकार सैकड़ों स्तुतियों से अपने लिए महान् पुण्य का संचय कर वे लौकांतिक देव स्वस्थान को चले गये।

इतने में ही आसन के कम्पायमान होने से चारों निकायों के देव अपने-अपने इन्द्रों के साथ तप-कल्याणक का उत्सव मनाने के लिए

आ गये और अयोध्यापुरी के चारों ओर से आकाश को घेर लिया। इन्द्रों ने प्रभु का तपकल्याणकके लिए क्षीरसागर के जल से महाभिषेक किया। अनन्तर बड़े आदर से दिव्य आभूषण, वस्त्र, मालाओं से भगवान् का अलंकार किया। तदनन्तर भगवान् ने साम्राज्य पद पर भरत का अभिषेक कर इस भारतवर्ष को सनाथ किया और युवराज पद पर बाहुबलि को स्थापित किया। इन दोनों भाइयों से अधिष्ठित पृथ्वी राजवन्ती हो गई थी। मुमुक्षु भगवान् ने अपने शेष पुत्रों के लिए भी यह पृथ्वी विभक्त करके बांट दी थी।

पश्चात् भगवान् महाराज नाभिराज आदि परिवार के लोगों से पूछकर इन्द्र द्वारा बनाई गई 'सुदर्शना' नामक पालकी पर बैठे। भगवान् की उस पालकी को प्रथम ही राजा लोग सात पैंड तक ले चले और फिर विद्याधर लोग आकाश से सात पैंड तक ले चले, अनन्तर वैमानिक और भवनत्रिक देवों ने हर्षित होकर वह पालकी अपने कन्धों पर रखी और अयोध्या नगरी से बाहर कुछ दूर "सिद्धार्थक" नामक वन में जा पहुंचे। वहां पर इन्द्र ने पहले से ही चन्द्रकान्त की शिला स्थापित कर दी थी और इन्द्राणी ने उस पर रत्नों के चूर्ण से चौक पूरा था। उस शिला के ऊपर सुन्दर मंडप बना हुआ था।

भगवान् ने पालकी से उतर कर शिला पर बैठकर मनुष्यों, देवों की सभा को यथायोग्य उपदेश दिया। सब लोग कुछ देर बाद वापस चले गये। भगवान् ने अपने देवों की और सिद्धों की साक्षी पूर्वक बाह्य आभ्यंतर परिग्रह, वस्त्रालंकार आदि का त्याग कर दिया। पूर्व दिशा की ओर मुंह करके पद्मासन से विराजमान भगवान् ने 'सिद्धं नमः' कहते हुए पंचमुष्टि से केशलोंच किया और समस्त पापारंभ से विरक्त होकर सामायिक चारित्र धारण कर लिया। वह दिन चैत्र कृष्ण नवमी का था। देवों ने भगवान् के पवित्र केशों को रत्न पिटारे में लेकर बड़े उत्सव

से ले जाकर क्षीरसागर में विसर्जित किया था।

उसी समय चार हजार अन्य राजाओं ने भी दीक्षा धारण कर ली। वे भगवान् के अभिप्राय को न जानते हुए केवल भक्ति से प्रेरित हुए दीक्षित हो गये। 'जो हमारे स्वामी को रुचे, वही हमें करना चाहिए' दस, इतना मात्र सोचकर वे सभी राजा द्रव्यलिंगी मुनि बन गए थे अर्थात् बाह्य से दिगम्बर वेश में थे और अन्तरंग से भावलिंगी नहीं थे। उस समय राजा भरत ने भी तमाम राजाओं के साथ आम, जामुन आदि उत्तम फलों से प्रभु के चरणों की पूजा की थी। भगवान् वृषभदेव छह महीने का योग लेकर ध्यान में लीन हो गये थे।

इसी बीच में कच्छ महाकच्छ के पुत्र नमि, विनमि नाम के दोनों ही राजा भक्तिपूर्वक भगवान् के चरणों में आ गये। और कहने लगे कि हे देव ! आपने साम्राज्य त्याग करते समय यह साम्राज्य अपने पुत्र पोतों के लिए बांट दिया और हमें भुला ही दिया, अतः अब हमें भी कुछ भोग सामग्री दीजिए। ऐसा कहते हुए भगवान् के ध्यान में विघ्न करने लगे। उस समय उन दोनों की जो भगवान् के प्रति विशेष भक्ति थी, उसके निमित्त से धरणेंद्र का आसन कंपित होने से वह धरणेंद्र वहां आया और उसने इस दोनों को बहुत कुछ समझाया कि ये भगवान् अब सब कुछ छोड़ चुके हैं। तुम दोनों राजा भरत की उपासना करो। किन्तु वे लोग धरणेन्द्र की एक भी नहीं माने। वे बोले कि हम लोग भगवान् के सिवाय अन्य किसी से कुछ नहीं चाहते हैं।

तब धरणेन्द्र भगवान् के ध्यान के विघ्न निवारण हेतु उन दोनों की भक्ति से प्रसन्न होता हुआ बोला कि मैं भगवान् का किंकर हूँ, भगवान ने मुझे बुलाकर तुम्हें इच्छित भोग सामग्री देने की आज्ञा दी है। अतः तुम दोनों मेरे साथ चलो। प्रभु की आज्ञानुसार ही मैं तुम्हें ले चलता हूं। ऐसा कहकर वह धरणेन्द्र उन दोनों को विजयार्ध पर्वत

पर ले गया, और वहां के 'रथनूपुर चक्रवाल' नगर में प्रवेश कर धरणेन्द्र ने उन दोनों को सिंहासन पर बैठाकर विद्याधरों से कहा कि 'ये तुम्हारे स्वामी हैं', ऐसा कहकर उनका राज्याभिषेक कर दिया। अनन्तर 'नमि' को दक्षिण श्रेणी और 'विनमि' की उत्तर श्रेणी का अधिपति प्रसिद्ध कर दिया। धरणेन्द्र ने बतलाया कि भगवान् वृषभदेव ने अपनी सम्मति से इन दोनों को यहाँ भेजा है। ऐसा सुनकर सभी विद्याधर मस्तक झुकाकर उनकी आज्ञा धारण करने लगे। वह धरणेन्द्र उन दोनों को गांधारपदा और पन्नगपदा नाम की विद्यायें देकर स्वस्थान में चला गया। यद्यपि ये लोग विद्याधर नहीं थे तो भी वहाँ पर अनेकों विद्याओं को सिद्ध कर लिया था। आचार्य कहते हैं कि देखो ! कहां ये नमि-विनमि भूमिगोचरी थे, और कहां तो विद्याधरों के इन्द्र बन गये ? अतः जिनेन्द्र भक्ति का प्रभाव अचिंत्य है।

विजयार्ध पर्वत पर चतुर्थ काल की आदि से अन्त तक ही परिवर्तन होता है, पुनः अन्त से आदि तक हुआ करता है। मनुष्यों की आयु उत्कृष्ट एक कोटि पूर्व और जघन्य आयु सौ वर्ष की होती है। तथा शरीर की उत्कृष्ट ऊंचाई पांच सौ धनुष और जघन्य सात हाथ की रहती है। यहां पर षट् ऋतुओं का परिवर्तन और असि, मषि आदि क्रियायें रहती हैं। सभी लोग अनेकों विद्याओं के प्रभाव से आकाश में गमन करते हुए अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की पूजा किया करते हैं। ये लोग तमाम विद्यायें उपवास आदि विधि से सिद्ध करते हैं और तमाम विद्यायें स्वयं सिद्ध जाति और कुल से मिला करती हैं। सचमुच में भगवान् वृषभदेव की भक्ति के प्रसाद से इन्हें यह वैभव मिला था।

●●●

पाखंडमत की उत्पत्ति

सन्तोष कुमार–हे भगवन् ! मिथ्या मतों की उत्पत्ति कब से हुई है ? सो कहिए।

मुनिराज–भावमिथ्यात्व तो अनादिकाल से इस पृथ्वी पर सर्वत्र चला ही आ रहा है। हां, द्रव्यमिथ्यात्व विदेह क्षेत्र में या विजयार्ध पर्वतों की श्रेणियों में या भोगभूमियों में नहीं है। सुनो, यहां यह कब से हुआ सो मैं बताता हूँ।

भगवान् वृषभदेव अपनी लम्बी-लम्बी भुजाओं को लटका कर और नासा के अग्रभाग पर दृष्टि टिकाकर ध्यानस्थ खड़े थे। भगवान् को दीक्षा लेते ही अन्तर्मुहूर्त में मनःपर्ययज्ञान भी प्रकट हो गया था। भगवान् के साथ इधर कच्छ, महाकच्छ आदि राजाओं ने भी बिना समझे बूझे दीक्षा ले ली थी। दीक्षा लिए दो-तीन माह भी नहीं हुए कि इन साधुओं का धैर्य भग्न हो गया। भूख, प्यास से पीड़ित हुए ये लोग बार-बार प्रभु की ओर देखते रहे और आश्चर्य करते थे। परस्पर में अनेक प्रकार की वार्ता करते हुए वे लोग वापस जाने से भी डरते थे कि भरत महाराज हमें क्या कहेंगे कि भगवान् को अकेले छोड़कर तुम लोग कैसे चले आये। वे सब भगवान् को चारों ओर से घेरे हुए थे। कितने ही भगवान् से पूछकर, कितने ही बिना पूछे प्रभु की प्रदक्षिणा करके उन्हें नमस्कार कर वन में यत्र-तत्र घूमने लगे और प्राण यात्रा के लिए वे लोग स्वयं ही तालाब का पानी पीने लगे तथा वन के फलादि खाने लगे।

इन दिगम्बर वेषधारी लोगों को अपने ही हाथों फल तोड़ते और पानी पीते देखकर वनदेवताओं ने उन्हें ऐसा करने से मना किया और कहा कि ऐसा मत करो। हे मूर्खों, यह दिगम्बर वेष सर्वश्रेष्ठ है। तीर्थंकर

तथा चक्रवर्ती आदि के द्वारा धारण करने योग्य है, महान् है, तुम लोग इसे कातरता का स्थान मत बनाओ।' वनदेवता के वचन सुनकर वे लोग उस वेष में वैसा करने से डर गये इसलिए उन दीन, भ्रष्ट तपस्वियों ने नीचे लिखे अनेकों वेष बना लिये।

कितने ही लोग वृक्षों की छाल पहनकर फल खाने लगे, कितने ही जीर्ण-शीर्ण लंगोटी पहनकर स्वेच्छाचारी बन गये, कितने ही भस्म लपेटकर जटाधारी बन गये। ये सभी भ्रष्ट साधु वृक्षों की छाल रूप वस्त्र, स्वच्छ जल और कंदमूल से बहुत समय तक अपना निर्वाह करते रहे। यद्यपि इनका घर सम्बन्धी मोह नहीं छूटा था, फिर भी वे भरत के डर से अपने-अपने घरों में नहीं गये थे और वहीं पर झोंपड़ी बनाकर रहने लगे थे। उनमें से कितने ही साधु परिव्राजक बन गये थे। उनमें वृषभदेव का पोता, भरत का पुत्र मरीचि कुमार भी परिव्राजक होकर योगशास्त्र और सांख्य शास्त्र का प्रवर्तक बन गया। ये लोग जल और फूलों से भगवान् के चरणों की पूजा करते थे, स्वयंभू वृषभदेव को छोड़कर इनका अन्य कोई देवता नहीं था।

अनन्तर जगद्गुरु भगवान् के ध्यान के छह महीने पूर्ण हो गये, तब वे मुनियों की चर्या की विधि बतलाने के लिए आहारार्थ निकले। वे सोचने लगे कि बड़े दुःख की बात है कि ये उत्तम वंशों में उत्पन्न हुए राजा लोग भूख-प्यास की बाधा से भ्रष्ट हो गये। प्रभु विचार करते हैं कि न तो इस शरीर का अति पोषण ही करना चाहिए और न इसे अत्यर्थ सुखाना चाहिए किन्तु मध्यम प्रवृत्ति का आश्रय लेकर इस शरीर से मोक्ष की सिद्धि करना चाहिए। यद्यपि भगवान् को आहार की आवश्यकता नहीं थी फिर भी मोक्ष-मार्ग को प्रगट करने के लिए पृथ्वी तल पर विहार किया।

उस समय लोग दिगम्बर मुनियों के आहार की विधि को नहीं

जानते थे, अतः कोई-कोई भगवान् के सम्मुख आकर उन्हें प्रणाम करते और उनके पीछे-पीछे चलने लगते, कोई बहुमूल्य रत्न लाकर भगवान् के सामने रखते और ग्रहण करने की प्रार्थना करते, कोई स्नान सामग्री और भोजन लेकर आकर प्रार्थना करते कि हे देव! प्रसन्न होइये और स्नान करके भोजन कीजिए, कोई हाथी-घोड़ा पालकी आदि वाहन लेकर आते और भेंट करते, कोई सपरिवार आकर प्रभु के चरणों से लिपट जाते और प्रार्थना करते। भगवान् की चर्या में उस समय क्षणभर को विघ्न आ जाता और जब वे हटते तब प्रभु पुनः आगे विहार कर जाते। कितने ही लोग रूप यौवन सम्पन्न कन्याओं को लाते और कहते कि प्रभो ! आप इन्हें ग्रहण कीजिए। आचार्य कहते हैं कि इन लोगों की मूर्खता को धिक्कार हो, जो ऐसी-ऐसी चेष्टा कर रहे थे। इस प्रकार जगत् में आश्चर्यकारी गूढ़चर्या से भ्रमण करते हुए भगवान् के छह मास और व्यतीत हो गये।

अनंतर भगवान् वृषभदेव हस्तिनापुर पधारे, उस समय वहां के राजा सोमप्रभ कुरुवंश के शिखामणि थे और उनका भाई श्रेयांस कुमार था। श्रेयांस कुमार ने उसी रात्रि में सुमेरु पर्वत, कल्पवृक्ष, सिंह, बैल, सूर्य चंद्र, समुद्र और व्यंतर देवों की मूर्तियां ऐसे सात स्वप्न देखे थे। पुरोहित ने भी बताया था कि आज आपके घर में जिनका मेरु पर अभिषेक हुआ है, ऐसे कोई देव आयेंगे। उसी समय नगर में भगवान् के दर्शनों से बहुत ही बड़ा कोलाहल हुआ।

सिद्धार्थ द्वारपाल से प्रभु का आगमन सुनते ही दोनों भाई उठ खड़े हुए और बाहर आये। भगवान् को देखते ही गद्गद् हो उन्हें नमस्कार करके प्रदक्षिणा दी। तत्क्षण ही राजा श्रेयांस को पूर्व भव का स्मरण आते ही आहार दान की विधि याद आ गई। जब वज्रजंघ और श्रीमती ने वन में चारण मुनि को आहार दान दिया था, उस समय का दृश्य

ज्यों-का-त्यों उपस्थित हो गया। राजा वज्रजंघ ही भगवान् आदिनाथ हुए और श्रीमती का जीव श्रेयांस कुमार हुआ। बस श्रेयांस कुमार ने सोमप्रभ और उनकी रानी लक्ष्मीमती के साथ बड़ी ही भक्ति से प्रभु को पड़गाहन करके नवधा भक्तिपूर्वक उनके हाथों की अंजुली में शुद्ध प्रासुक इक्षुरस का आहार दिया। उसी समय आकाश में देवों का समुदाय उमड़ पड़ा। रत्नों की वर्षा, पुष्पों की वर्षा, मंद सुगंधित वायु, दुंदुभि बाजे और जय-जयकार के नाद से आकाश तथा भूमंडल व्याप्त हो गया। उस समय दोनों भाइयों ने अपने आपको कृतकृत्य माना। जहां स्वयं तीर्थंकर वृषभदेव भगवान् आहार लेने वाले हैं और श्रेयांस कुमार जैसे पुण्यशाली देने वाले हैं देवों के पंचाश्चर्य हो रहे हैं, उस समय के आहार दान के महत्व का क्या वर्णन किया जा सकता है ?

भगवान् आहार के अनंतर वन को विहार कर गये, कुछ दूर राजा सोमप्रभ, श्रेयांस कुमार भी उनके पीछे-पीछे गये पुनः वापस आ गये। उस दिन राजा के यहां भोजन अक्षय हो गया था, चाहे चक्रवर्ती का कटक भी जीम ले तो भी उसका क्षय नहीं हो सकता था। और वह दिन वैशाख सुदी तृतीया का था, इसलिए 'अक्षय तृतीया' उसका यह सार्थक नाम प्रसिद्ध हो गया जो कि आज तक भी सर्वत्र प्रसिद्ध है। उस समय राजा श्रेयांस दानतीर्थ के प्रवर्तक कहलाये थे।

देवों ने भी आश्चर्य के साथ श्रेयांस कुमार की बड़ी भारी पूजा की तथा भरतचक्री ने आकर पूछा कि हे कुरुवंश शिरोमणि ! तुमने यह विधि कैसे जानी ? तब श्रेयांस कुमार ने वृषभदेव के आठवेंभव पूर्व के वज्रजंघ और श्रीमती द्वारा दिये गये दान की सारी कथा कह सुनाई। सुनकर चक्रवर्ती भरत ने भी परमप्रीति को प्राप्त होकर राजा सोमप्रभ और श्रेयांस कुमार का खूब सम्मान किया तथा वृषभदेव के गुणों का चिंतवन करते हुए अपने घर वापस आ गये।

संतोष कुमार–आदिनाथ भगवान् के समय से ही और उनके पौत्र मरीचि ने ही मुख्य होकर ये पाखंड मत चलाये। पीछे वह मरीचि कुमार तीर्थंकर महावीर होकर मुक्ति को प्राप्त हो गये किन्तु मरीचि कुमार द्वारा प्रतिपादित मत का प्रभाव अब भी बढ़ता ही जा रहा है यही आश्चर्य की बात है।

मुनिराज–हां संतोष कुमार, जो चीज एक बार चल जाती है वह जड़-मूल से नष्ट नहीं हो पाती है। फिर तो आज कलिकाल के प्रभाव से यह मिथ्यामत वृद्धिंगत ही हो रहा है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आश्चर्य तो इस बात का है कि जो आज ऐसे निकृष्ट काल में भी मुनिमार्ग का अवलंबन लेने वाले दिगम्बर जैन साधु और सच्चे सम्यग्दृष्टि श्रावक दिख रहे हैं। इसलिए वस्तुस्थिति में आश्चर्य न करके अपनी आत्मा का जल्दी से जल्दी कल्याण कर लेना चाहिए। अपने सम्यक्त्व को बाह्य चकाचौंध से मलिन नहीं करना चाहिए।

संतोष कुमार–हां गुरुदेव ! आपके आशीर्वाद से ऐसा ही होगा। नमोस्तु।

●●●

भगवान् की दिव्य गोल सभा

संतोष कुमार–हे गुरुदेव ! तीर्थंकरों की सभा कब और कैसी होती है ? तथा वे उपदेश कब देते हैं ?

मुनिराज–तीर्थंकर भगवान् दीक्षा लेने के बाद केवलज्ञान प्रगट होने तक मौन पूर्वक ही विहार करते हैं। अनंतर केवलज्ञान के बाद उनका समवसरण बनता है उसमें गोलसभा होती है और बिना इच्छा के ही भगवान् का दिव्य उपदेश होता है।

संतोष कुमार–हे भगवन् ! मुझे समवसरण के विषय में कुछ थोड़ा-सा ज्ञान कराइये।

मुनिराज–सुनो, भगवान् वृषभदेव दीक्षा के अनंतर एक हजार वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहे, अनंतर एक दिन पुरिमताल नाम के नगर के बाहर 'शकट' नाम के उद्यान में पहुँचे, वहां ध्यान की सिद्धि के लिए वटवृक्ष के नीचे एक शिला पर विराजमान हो गये। फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में भगवान् ने मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया, उसी समय प्रभु को केवलज्ञान प्रगट हो गया, स्वर्गों में होने वाले चिन्हों से देवेन्द्रों ने प्रभु के ज्ञान की सिद्धि को जानकर तत्क्षण आकर केवलज्ञान महोत्सव मनाया, और समवसरण की रचना कर दी।

भगवान् वृषभदेव का समवसरण बारह योजन विस्तृत इंद्रनीलमणि से निर्मित था। उसके बाहरी भाग में रत्नों की धूली से बना हुआ 'धूलीसालकोट' था। वह इंद्रधनुष के सदृश वर्णवाला, चारों ओर से परकोटे के समान सुन्दर था। इसके बाहर चारों दिशाओं में सुवर्णमय खंभों वाले, चार दिशा गें चार तोरण द्वार थे। उस धूलीसाल के भीतर चारों दिशाओं में ऊँचे-ऊँचे चार मानस्तम्भ थे, जो कि मिथ्यादृष्टियों का मान शीघ्र ही नष्ट कर देते थे। मातस्तंभ के समीपवर्ती भूभाग को अलंकृत करती हुई मानस्तंभ के चारों तरफ चार-चार बावड़ियां थीं, वे मणिमयी सीढ़ियों से युक्त, स्वच्छ जल से भरी हुई थीं। उनके किनारों पर पांव धोने के लिए कुंड बने हुए थे। उन बावड़ियों से आगे कमलों से व्याप्त, जल से भरी और चारों तरफ से घेरे हुए एक 'परिखा' थी। उस परिखा के भीतर भाग को एक 'लतावन' घेरे हुए था, जो कि फूले हुए फूलों से उज्ज्वल हास्य बिखेर रहा था। उस लतावन के अनंतर सुवर्णमय को चारों ओर से घेरे हुए था। उसमें चारों दिशाओं में चार

गोपुर द्वार थे। प्रत्येक द्वार पर मंगल द्रव्य एक सौ आठ और सौ-सौ तोरण थे। दरवाजे के बाहर नवनिधियां रखी हुई थीं। दरवाजे के दोनों बाजू में दो नाट्यशाला थीं। बहुत से धूपघट रखे हुए थे। कुछ दूर आगे बढ़कर अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र के चार वन थे। अशोकवन में अशोक नाम का चैत्यवृक्ष था जिसमें जिनप्रतिमायें विराजमान थीं, ऐसी ही सप्तछद, चंपक और आम्र के भी चैत्यवृक्ष थे, ये चैत्यवृक्ष जिनप्रतिमा सहित थे और बहुत ही ऊँचे थे। उन वनों के चारों ओर एक वनवेदी थी, जो सुवर्णमयी थी।

सिद्धार्थवृक्ष, चैत्यवृक्ष, कोट, वनवेदिका, स्तूप, तोरण सहित मानस्तंभ और ध्वजस्तंभ ये सब तीर्थंकरों की ऊँचाई से बारह गुने होते हैं। उपर्युक्त वनवेदिका से आगे सुवर्णमय खंभों के अग्र भाग पर लटकती हुई अनेक प्रकार की ध्वजों की पंक्तियाँ शोभित हो रही थीं। इनमें माला, वस्त्र, मयूर, कमल, हंस, गरुड़, सिंह, बैल, हाथी और चक्र ये चिन्ह थे। एक-एक दिशा में वे सब ध्वजायें एक हजार अस्सी थीं और चारों दिशाओं में चार हजार तीन सौ बीस थीं।

उन ध्वजाओं के भीतर के भाग में चांदी से निर्मित एक कोट था जो द्वितीय होकर भी अद्वितीय था। प्रथम कोट के सदृश इसके गोपुर द्वारों में नव निधियां, धूपघट, नाट्यशालायें थीं। धूपघटों के बाद गलियों के बीच के अन्तराल में कल्पवृक्षों का वन था। इसमें दश प्रकार के कल्पवृक्ष तीन लोक के जनों के लिए इच्छित फलदायी वैभव स्वरूप थे। उन कल्पवृक्षों की व वन वीथी को भीतर की ओर चारों तरफ से स्वर्णमय वनवेदिका घेरे हुए थी। इनके गोपुर द्वारों में तोरण, मंगलद्रव्य आदि सम्पदायें इकट्ठी थीं। इनके आगे भीतर की ओर देव कारीगरों से निर्मित मकानों की पंक्तियां थीं। इनमें चतुर्निकाय देवगण संगीत, नृत्य आदि से भगवान् की आराधना कर रहे थे।

महावीथियों के मध्य भाग में नौ-नौ स्तूप खड़े थे, जो कि पद्मरागमणि से निर्मित थे। उन स्तूपों पर छत्रादि सहित जिनप्रतिमायें विराजमान थीं, भव्य लोग उनका अभिषेक, पूजा स्तुति आदि करते रहते थे। उन स्तूपों और मकानों की पंक्तियों से घिरी हुई भूमि से आगे आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक मणि का बना कोट था, जो कि तृतीय कोट कहलाता था। इसके गोपुर द्वारों पर मंगल द्रव्य, नवनिधियां आदि विद्यमान थीं। स्फटिक कोट से पीठ पर्यंत लम्बी दीवारें थीं। ये दीवारें बारह सभाओं का विभाग करती थीं। उन दीवारों पर रत्नमय खंभों से खड़ा हुआ, आकाश स्फटिक मणि से निर्मित, बहुत बड़ा 'श्रीमंडप' था, इस मंडप में तीनों लोकों की लक्ष्मी शोभित थी। तीनों लोकों के समस्त जीवों को स्थान देने में समर्थ होने से आकाश के सदृश था। यह एक योजन विस्तृत था। फिर भी भगवान् के अतिशय के प्रभाव से इसमें असंख्यात् सुर-असुर और संख्यात् मनुष्य तथा तिर्यंच बिना बाधा के बैठे हुए थे।

उस श्रीमंडप को घेरे हुए मध्य भाग में पीठिका है उसमें तीन कटनी है। पहली कटनी पर आठ मंगल द्रव्य और यक्षों के ऊँचे-ऊँचे मस्तकों पर रखे हुए हजारों आरों वाले धर्मचक्र सुशोभित हो रहे थे। दूसरी कटनी पर ध्वजायें थीं, उसके ऊपर तीसरी कटनी रत्नों से निर्मित सुशोभित हो रही थी। उस तीन कटनी सहित पीठ पर जिनेन्द्रदेव विराजमान थे।

समवसरण का प्रमाण–स्फटिक निर्मित तृतीय कोट के भीतर का विस्तार एक योजन था, लतावन, अशोकादिवन, कल्पवृक्षवन और ध्वजाभूमि, इनका विस्तार भी एक योजन प्रमाण था और परिखा भी धूलि से एक योजन चलकर थी। आकाश स्फटिक मणियों से बने हुए कोट से कल्पवृक्षों के वन की वेदिका आधा योजन दूर थी और उसी

साल से प्रथम पीठ पाव योजन दूर था। गोपुर द्वारों के सामने के बड़े-बड़े रास्ते एक-एक कोस चौड़े थे। भगवान् के सिंहासन और धर्म-चक्र की ऊंचाई एक धनुष प्रमाण थी।

गंधकुटी–तीन कटनियों से चिह्नित पीठ पर सुन्दर गन्धकुटी बनी हुई थी। वह गंधकुटी छह सौ धनुष चौड़ी, उतनी ही लम्बी और उससे कुछ अधिक ऊँची थी। उसके मध्य में एक सिंहासन था, जो कि कुबेर द्वारा निर्मित रत्नजटित था। उस सिंहासन पर चार अंगुल ऊंचे अधर श्री वृषभदेव भगवान् विराजमान थे। भगवान् के समीप एक सुन्दर अशोकवृक्ष था, जो कि मरकत मणियों से बना हुआ था। प्रभु के ऊपर तीन छत्र ढुर रहे थे, दोनों तरफ यक्षगण चौंसठ चमर ढोर रहे थे। आकाश में देव दुंदुभि बाजे बज रहे थे, भगवान् के शरीर की प्रभा करोड़ों सूर्यों की प्रभा को तिरस्कृत कर फैल रही थी और उस प्रभामंडल में भव्य जीव अपने-अपने सात-सात भव स्पष्ट देख लेते थे, भगवान् के मुख रूपी कमल से सर्वभाषामय दिव्य ध्वनि प्रगट हो रही थी और आकाश से पुष्प वृष्टि हो रही थी जिसकी सुगंधि चारों ओर फैल रही थी। इस प्रकार भगवान् के ये आठ प्रातिहार्य भगवान् की आर्हत्य विभूति को प्रगट करते हुए सर्वोत्तम थे।

संक्षेप में समवरण की रचना

सबसे पहले धूली साल, उसके बाद चारों दिशाओं में चार मानस्तम्भ, मानस्तंभों के चारों ओर सरोवर, फिर निर्मल जल से भरी हुई परिखा, फिर पुष्पवाटिका, उसके आगे पहला कोट, उसके आगे दोनों ओर दो-दो नाट्यशालायें, उसके आगे अशोकादि के वन, उसके बाद वेदिका, फिर ध्वजाओं की पंक्तियां, फिर दूसरा कोट, फिर वेदिका सहित कल्पवृक्षों का वन, उसके बाद स्तूप, फिर मकानों की पंक्तियां, फिर स्फटिक मणिमय तीसरा कोट, उसके भीतर बारह सभायें हैं।

अनंतर पीठिका है। और पीठिका के अग्रभाग पर स्वयंभू जिनेन्द्र देव विराजमान हैं। अर्हंत देव स्वभाव से पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके समवसरण में रहते हैं।

उनके चारों ओर प्रदक्षिणा के क्रम से ऋद्धियों के ईश्वर गणधर और मुनिगण, कल्पवासिनी देवियाँ, आर्यिकायें और श्राविकाएँ, भवनवासिनी देवियां, व्यन्तरिणी देवियां, ज्योतिषी देवियां, भवनवासीदेव, व्यंतरदेव, ज्योतिषदेव, कल्पवासी देव, मनुष्य और पशु इन बारह गणों के बैठने योग्य बारह सभायें हैं।

जिनेन्द्र भगवान् अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य इन अनंत चतुष्टय रूप अन्तरंग लक्ष्मी और बाह्य समवसरण लक्ष्मी के स्वामी हैं। यद्यपि भगवान् का एक तरफ मुख है फिर भी अतिशय विशेष से चारों तरफ मुख दिखने से सभी बारह सभा वाले अपनी-अपनी तरफ मुख देखते रहते हैं। इसीलिए भगवान् की सभा गोल है।

सन्तोष कुमार–भगवन् ! समवसरण की दिव्य सभा का वर्णन आपने बहुत ही सुन्दर सुनाया है। अब यह बताइये कि भगवान् की दिव्यध्वनि कैसे खिरती है ?

मुनिराज–सुनो, किसी समय भरत राजर्षि को एक साथ तीन समाचार प्राप्त हुए। पूज्य पिता को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। अन्तःपुर में पुत्र का जन्म हुआ है और आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न-प्रगट हुआ है। समाचार सुनते ही राजा भरत ने एक क्षण के लिए सोचा कि पहले किसका उत्सव मनायें ? अनन्तर उन्होंने सोचा कि धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों के फल ये तीन समाचार हैं। अर्थ और काम की सिद्धि में धर्म ही मूल है, अतः सबसे प्रथम भगवान् वृषभदेव का दर्शन करना चाहिए।

अनंतर भरत अपने छोटे भाई, अन्तःपुर की स्त्रियाँ और नगर

के मुख्य-मुख्य लोगों के साथ समवसरण में पहुंचे। भगवान् की प्रदक्षिणा देकर उत्कृष्ट सामग्री से पूजा की, दोनों घुटने पृथ्वी पर टेककर बार-बार नमस्कार किया। अनेकों स्तोत्रों से प्रभु की स्तुति की। पुनः श्रीमण्डप में प्रवेश करके यथायोग्य स्थान पर बैठ गये। उस समय वह सभा देवों, मनुष्यों से खचाखच भरी हुई थी। भरत ने अत्यन्त विनय से हाथ जोड़कर प्रभु से प्रार्थना की कि हे भगवन्! तत्वों का विस्तार कैसा है ? मार्ग कैसा है ? और उसका फल भी कैसा है ? हे देव ! मैं आपसे यह सब सुनना चाहता हूं। भरत का प्रश्न समाप्त होने पर भगवान् वृषभदेव की दिव्यध्वनि खिरी, उस समय भगवान् के मुख पर कोई परिवर्तन नहीं हुआ। ओष्ठ, तालु आदि स्थान नहीं हिले, जिसमें सब अक्षर स्पष्ट हैं ऐसी वाणी बिना इच्छा के भव्यों के पुण्य से प्रकट हो रही थी। वह दिव्य-ध्वनि अठारह मुख्य भाषाओं में और सात सौ लघु भाषाओं में ऐसे सात सौ अठारह भाषाओं में अथवा संख्यात भाषाओं में होती थी। भगवान् कहने लगे कि जीव-अजीवादि पदार्थों का यथार्थ स्वरूप ही तत्व है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ही मोक्षमार्ग है और इस मार्ग का फल मोक्ष है। इत्यादि रूप से विस्तार से धर्म के स्वरूप का विवेचन हुआ।

प्रथम गणधर–उसी समय उसी पुरिमताल नगर के स्वामी भरत के छोटे भाई 'वृषभसेन' वहां पूज्य पिता के दर्शनार्थ आये और प्रभु से संबोध को प्राप्त कर दीक्षा लेकर भगवान् के प्रथम गणधर हो गये। और तत्काल ही मनः पर्ययज्ञान तथा सप्त ऋद्धियों से विभूषित हो गये। उसी समय कुरुवंश शिरोमणि हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ और श्रेयांस कुमार तथा अन्य राजा भी भगवान् से दीक्षा लेकर गणधर हो गये। तथा अन्य अनेकों राजाओं ने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। भरत की छोटी बहन ब्राह्मी भी गुरुदेव की कृपा से दीक्षित होकर आर्यिकाओं के बीच

गणिनी हो गई। बाहुबलि की छोटी बहन सुन्दरी ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। तथा अनेक राजकन्याओं ने भी आर्यिका दीक्षा लेकर स्त्रीपर्याय से मुक्त होकर मोक्ष जाने का उद्यम किया था। श्रुतकीर्ति नामक किसी बुद्धिमान ने श्रावक व्रत ग्रहण कर लिये और वह देशव्रतियों में श्रेष्ठ हो गया। प्रियव्रता नामक एक सती श्राविका ने श्राविका के व्रत धारण कर श्राविकाओं में उत्तम स्थान ग्रहण किया। ऐसे ही अनेकों भव्य जीवों ने व्रतों से अपनी आत्मा को अलंकृत किया था।

भरत के छोटे भाई अनंतवीर्य ने भी प्रभु से जैनेश्वरी दीक्षा ले ली, ये सबसे पहले मोक्ष गये हैं। जो चार हजार राजा वृषभदेव की दीक्षा के समय दीक्षित होकर भ्रष्ट हो गये थे, उनमें से मरीचि को छोड़कर बाकी सभी तपस्वी भगवान् के समीप संबोध पाकर फिर से दीक्षित होकर तपस्या करने लगे।

भरत चक्रवर्ती अपने भाई बाहुबलि आदि के साथ समवसरण से वापस अयोध्या आ गये। चक्ररत्न की पूजा करके पुत्र का जन्मोत्सव मनाकर उन्होंने षट्खंड को जीतने के लिए प्रस्थान कर दिया।

भगवान् का श्रीविहार—अनन्तर इन्द्र ने भगवान् की एक हजार आठ नामों से स्तुति करते हुए प्रार्थना की कि हे भगवन् ! चिरकाल से भव्य जीवरूपी धान्य पापरूपी अनावृष्टि से सूख रहे हैं, सो हे विभो! उन्हें धर्मरूपी अमृत से सींचकर उनके लिए आप ही शरण होइये। अब आपका यह समीचीन मोक्षमार्ग के उपदेश देने का समय प्राप्त हुआ है। उस समय भगवान् का स्वभाव से ही विहार होने वाला था, अतः इन्द्र की प्रार्थना सफल हो गई। प्रभु के श्रीविहार का वर्णन बड़ा ही रोमांचकारी है। उस समय करोड़ों देव इधर-उधर चलने लगे। जय-जयकार के शब्द से और दुन्दुभि बाजों के गम्भीर नाद से आकाश व्याप्त हो गया, पृथ्वी दर्पणवत् स्वच्छ हो गई, मंद सुगन्ध वायु बहने

लगी, पवन कुमार जाति के देवों ने भूमि को कंकड़-पत्थर-धूलि से रहित कर दिया, मेघकुमार ने सुगन्धित जलवृष्टि करके मार्ग को सुन्दर बना दिया, शालि आदि खेती सर्वत्र हरी-भरी हो गई। श्रीविहार में धर्मचक्र आगे-आगे चल रहा था, मंगल द्रव्य तथा फहराती हुई ध्वजाओं से आकाश मंडल व्याप्त था, सभी षट्ऋतु के फल-फूल फलित हो रहे थे, भगवान् के माहात्म्य से चार सौ कोश तक पृथ्वी पर सुभिक्ष था, विहार के समय देवगण प्रभु के चरणों के नीचे स्वर्णमय कमलों की रचना करते रहते थे, वे कमल आगे-पीछे के सभी मिलकर २२५ हो जाते हैं, सुवर्ण कमल पर पैर रखने वाले प्रभु ने जहां-जहां विहार किया, वहां-वहां के भव्यों ने धर्मामृतरूपी जल की वर्षा से परम सन्तोष धारण किया था। भगवान् ने काशी, अवन्ति, कुरु, कौशल, सुह्म, पुण्ड्र, चेदि, अंग, वंग, मगध, आंध्र, कलिंग, मंद्र, पंचाल, मालव, दशार्ण और विदर्भ आदि देशों में विहार किया था। अनन्तर कैलास पर्वत पर पहुंच गये। वहां समवसरण में सभा मण्डप में विराजमान हैं।

चक्रवर्ती भरत जब दिग्विजय करके वापस आये तब उनका चक्ररत्न अयोध्या नगरी के बाहर ही रुक गया। अभी विजय बाकी है ऐसा समझकर चक्रवर्ती ने अपने निन्यानवे भाइयों के पास दूत भेजा। वे भाई भगवान् वृषभदेव के समवसरण में जाकर दीक्षित हो मुनि बन गए। अनन्तर बाहुबलि के पास दूत भेजने से बाहुबलि नमस्कार के लिए तैयार नहीं हुए, प्रत्युत युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये। मंत्रियों की प्रार्थना से दोनों भाइयों में दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध हुआ, इन तीनों में बाहुबली की विजय देख भरत ने चक्ररत्न उन पर चला दिया किन्तु चक्र उनकी प्रदक्षिणा देकर निस्तेज हो गया। इस घटना से

---

१. जिस मार्ग में भगवान् का विहार होता था वह मार्ग अपने चिह्नों से एक वर्ष तक यह प्रगट करता रहता था कि यहाँ भगवान् का विहार हुआ है। (हरिवंश पु० पृ० ७०३)

बाहुबली विरक्त हो दीक्षित होकर एक वर्ष का उपवास और योग लेकर वन में निश्चल खड़े हो गये। उनके ऊपर लतायें चढ़ गईं, सर्पों ने वामियाँ बना ली थीं। एक वर्ष बाद भरत ने आकर पूजा की और बाहुबलि को केवलज्ञान प्रगट हो गया।

वंदनमाला–भरत चक्रवर्ती भगवान् के समवसरण में जाकर निरन्तर शंलाका पुरुषों का चरित सुनते रहते थे। उन्होंने चौबीस तीर्थंकरों की वंदना के लिए रत्न निर्मित घंटियों से सहित चौबीस वंदनमालायें बँधवाई थीं। जिनका निकलते समय सिर से स्पर्श होता था, तब उन घंटियों की आवाज से वे चक्रवर्ती तीर्थंकरों का स्मरण कर उन्हें परोक्ष नमस्कार किया करते थे।

चक्रवर्ती के पुत्रों का मोक्ष गमन–किसी समय चक्रवर्ती के विवर्धन आदि नौ सौ तेइस राजकुमार भगवान् के समवसरण में प्रविष्ट हुए। उन्होंने पहले कभी तीर्थंकर के दर्शन नहीं किये थे, वे अनादि मिथ्यादृष्टि थे और अनादि काल से ही स्थावरकायों में जन्म-मरण कर क्लेश को प्राप्त हुए थे। भगवान् की लक्ष्मी को देखकर वे परम आश्चर्य को प्राप्त हुए और अन्तर्मुहूर्त में ही उन्होंने संयम ग्रहण कर लिया। वे सब उसी भव से मोक्ष चले गये हैं। अहो ! कितने आश्चर्य की बात है कि जिन्होंने मनुष्य भव क्या त्रस पर्याय ही पहली बार पाई थी, वे भगवान् के निमित्त से उसी भव से मोक्ष चले गये। यह है समवसरण में जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन का माहात्म्य।

स्वयंवर प्रथा–भरत महाराज के साम्राज्य में ही सर्वप्रथम स्वयंवर प्रथा का प्रारम्भ हुआ। बनारस के राजा अकंपन की पुत्री सुलोचना ने स्वयंवर में हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ के पुत्र मेघेश्वर, जयकुमार को वरा था। महाराजा अकंपन ने भी एक हजार पुत्रों के साथ भगवान् से दीक्षा ले ली थी। जयकुमार ने भी राज्य सुखों को भोगने के बाद

दीक्षा ले ली और भगवान् के इकहत्तरवें गणधर हो गये। सुलोचना भी आर्यिका दीक्षा लेकर ग्यारह अंगों की पाठिका बन गई थी। इस प्रकार अनेकों भूमिगोचरी तथा विद्याधरों ने भगवान् के समवसरण में दीक्षा लेकर अपनी आत्मा का कल्याण किया था।

संतोष कुमार–हे गुरुदेव ! भगवान् की वाणी का आपने महत्व बतलाया। अब मैं द्वादशांग के अंशरूप आज के उपलब्ध चारों अनुयोगों का स्वाध्याय अवश्य करूँगा।

मुनिराज–हाँ सन्तोष ! स्वाध्याय के समान इस पंचमकाल में अन्य दूसरा तप नहीं है।

●●●

भरत चक्रवर्ती के स्वप्न

सन्तोष कुमार–हे भगवन् ! ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति कब से हुई है ?

मुनिराज–सुनो, भरत सम्राट् सम्पूर्ण भारतवर्ष को जीतकर अयोध्या को अपनी राजधानी बनाकर सुखपूर्वक प्रजा का पालन कर रहे थे, कि एक दिन सम्पत्ति का दान देने के लिए मन में विचार किया और अणुव्रती गृहस्थों की परीक्षा के लिए एक उपाय सोचा। राजराजेश्वर भरत ने अपने यहां समस्त राजाओं को बुलाया, इधर-उधर के आंगन में सब तरफ हरे-हरे अंकुर फल और फूल खूब भरवा दिये। उन लोगों में अव्रती लोग तो बिना सोचे-विचारे अन्दर घुस आये, परन्तु बड़े-बड़े कुलों में उत्पन्न, अपने व्रतों की रक्षा की इच्छा रखने वाले नहीं आये। तब राजा ने उन्हें दूसरे प्रासुक मार्ग से बुलाया। राजा भरत ने व्रतों में दृढ़ रहने वाले उन लोगों का दान, मान आदि से सत्कार किया। भरत

ने उन्हें उपासकाध्ययन से इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप का उपदेश दिया था। जो एक बार गर्भ से और दूसरी बार क्रिया से इस प्रकार दो बार उत्पन्न हुआ हो उसे द्विजन्मा—द्विज या ब्राह्मण कहते हैं। ऐसे चक्रवर्ती ने इस ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति की। राजा ने इन ब्राह्मणों को तीन प्रकार की क्रियाओं के करने का उपदेश दिया। गर्भान्वय क्रिया, दीक्षान्वय क्रिया और कर्त्रन्वय क्रिया। इनमें गर्भान्वय क्रिया के त्रेपन भेद हैं, दीक्षान्वय के अड़तालीस और कर्त्रन्वय के सात भेद माने गये हैं।

●●●

चक्रवर्ती के सोलह स्वप्न

कितने ही काल बीत जाने पर एक दिन सम्राट् भरत ने अद्भुत फल दिखाने वाले कुछ स्वप्न देखे। वे अचानक जाग उठे और उनका फल पंचम काल में होगा तथा अशुभ होगा, ऐसा समझकर भी वे भगवान् के समवसरण में पहुंचे। प्रभु की वंदना के समय भरत को परिणामों की निर्मलता विशेष से अवधिज्ञान प्रकट हो गया। पुनः भरत ने भगवान् से निवेदन किया कि हे भगवन् ! मैंने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की है। समस्त धर्म सृष्टि को साक्षात् उत्पन्न करने वाले आपके रहते हुए मैंने यह महान् मूर्खता की है। हे देव ! इसमें क्या दोष है और क्या गुण है ? सो कृपा कर कहिए। तथा हे नाथ ! आज मैंने रात्रि में सोलह स्वप्न देखे हैं, उनके फल का भी निरूपण कीजिए। तब भगवान् की दिव्यध्वनि खिरी। हे भरत ! यह ब्राह्मणों की रचना यद्यपि आज दोष उत्पन्न करने वाली नहीं है, फिर भी आगामी काल में खोटे मतों को उत्पन्न करेगी अतः दोष का बीज रूप है। तूने जो स्वप्न देखे हैं, खेद

है कि वे पंचम काल में धर्म के ह्रास को सूचित करने वाले हैं। क्रमशः उनका फल सुनो।

१. तूने जो पृथ्वी पर अकेले विहार कर पर्वत पर चढ़े हुए तेइस सिंह देखे हैं, उसका फल यह है कि श्री महावीर स्वामी को छोड़कर शेष तेईस तीर्थंकरों के समय दुष्टनयों की उत्पत्ति नहीं होगी।

२. अकेले सिंह के बच्चे के पीछे हरिणों का समूह देखने से श्री महावीर स्वामी के तीर्थ में परिग्रह सहित बहुत से कुलिंगी हो जावेंगे।

३. हाथी के उठाने योग्य बोझ से जिसकी पीठ झुक गई, ऐसे घोड़े के देखने से पंचम काल के साधु समस्त तपश्चरण के भार को उठाने में समर्थ नहीं होंगे।

४. सूखे पत्ते खाने वाले बकरों को देखने से मालूम होता है कि आगामी काल में मनुष्य सदाचार को छोड़कर दुराचारी हो जावेंगे।

५. गजेन्द्रं के कन्धे पर चढ़े हुए वानरों के देखने से, आगे चल कर प्राचीन क्षत्रिय वंश नष्ट हो जावेंगे और नीच कुल वाले पृथ्वी का पालन करेंगे।

६. कौवों द्वारा उल्लू को त्रास दिया जाना देखने से, मनुष्य धर्म की इच्छा से जैन मुनियों को छोड़कर अन्य मत के साधुओं के समीप जायेंगे।

७. नाचते हुए बहुत से भूतों को देखने से, प्रजा के लोग व्यंतरों को देव समझकर उनकी उपासना करने लगेंगे।

८. जिसका मध्यभाग सूखा हुआ है, ऐसे तालाब के चारों ओर पानी देखने से, धर्म आर्यखंड से हटकर म्लेच्छों में ही रह जायेगा।

९. धूल से मलिन रत्नों की राशि देखने से पञ्चम काल में ऋद्धिधारी मुनि उत्पन्न नहीं होंगे।

१०. आदर से जिसकी पूजा की गई ऐसे कुत्ते को नैवेद्य खाते

देखने से, व्रतरहित ब्राह्मण गुणी पात्रों के समान सत्कार पायेंगे।

११. ऊंचे स्वर से शब्द करते हुए तरुण बैल का विहार देखने से, लोग तरुण अवस्था में ही मुनिपद में ठहर सकेंगे अन्य अवस्था में नहीं।

१२. परिमंडल से घिरे चन्द्रमा के देखने से, पंचमकाल के मुनियों में अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान नहीं होगा।

१३. परस्पर मिलकर जाते हुए दो बैलों के देखने से यह सूचित होता है कि पञ्चमकाल में मुनिजन साथ-साथ रहेंगे, अकेले विहार करने वाले नहीं होंगे।

१४. मेघों से ढके हुए सूर्य के देखने से, पञ्चमकाल में केवलज्ञान रूपी सूर्य का उदय नहीं होगा।

१५. सूखा वृक्ष देखने से, स्त्री-पुरुषों का चरित्र भ्रष्ट हो जाएगा।

१६. जीर्ण पत्तों के देखने से मालूम होता है कि महाऔषधियों का रस नष्ट हो जायेगा।

हे वत्स ! ऐसे फल देने वाले इन स्वप्नों को तू पंचमकाल में फल देने वाला समझ और समस्त विघ्नों की शांति के लिए धर्म में बुद्धि कर। इस प्रकार भगवान् के उपदेश से परम सन्तोष को प्राप्त भरत महाराज बार-बार जगद्गुरु को प्रणाम कर अयोध्या वापस आ गये। और खोटे स्वप्नों से होने वाले अनिष्ट की शांति के लिए जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाओं का महाभिषेक किया, महर्षियों की पूजा की और बड़े-बड़े दान दिये। अनन्तर बहुमूल्य रत्नों से बने हुए, जिनेन्द्र की प्रतिमाओं से सजे हुए बहुत से घंटे बनवाये तथा ऐसे-ऐसे चौबीस घंटे बाहर के दरवाजे पर, राजभवन के महाद्वार पर और गोपुर दरवाजे पर अनुक्रम से टंगवा दिये। जब वे चक्रवर्ती बाहर निकलते या प्रवेश करते, तब मुकुट के अग्रभाग पर लगे हुए घंटाओं से उन्हें चौबीस तीर्थंकर का

स्मरण होता था।

उसी समय से नगरवासी लोगों ने भी दरवाजों पर तोरण-मालाओं में जिनप्रतिमा आदि से युक्त घंटे बांधे थे। चूँकि भरतेश्वर ने अर्हंतदेव की वन्दना के लिए वँदनमालायें बांधी थीं, अतएव आज भी प्रत्येक घर पर 'वन्दनमालाएं' दिखाई देती हैं।

भगवान् वृषभदेव के ८४ गणधर थे। नानागुणों से युत मुनियों का सात प्रकार का संघ था। जिसमें पूर्वधर, शिक्षक, अवधिज्ञानी, केवली, विक्रियाऋद्धिधारी, विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी और वादी ये होते हैं। ये सब ८४००० थे, ५०००० आर्यिकायें, ३००००० श्रावक, ५००००० श्राविकायें, असँख्यात् देव-देवियाँ और संख्यात् मनुष्य-तिर्यंच थे।

भगवान् का मोक्षगमन

इस प्रकार भगवान ने भव्यों को मोक्षफल की प्राप्ति कराने के लिए अपने गणधरों के साथ एक हजार वर्ष और चौदह दिन कम, एक लाख वर्ष पूर्व तक विहार किया। आयु के चौदह दिन शेष रहने पर श्रीशिखर और सिद्ध शिखर के बीच कैलास पर्वत पर योग निरोध कर विराजमान हो गये। वह दिन पौष सुदी पूर्णिमा का था। उसी दिन भरतेश्वर ने यह स्वप्न देखा कि महामेरु पर्वत अपनी लम्बाई से सिद्ध क्षेत्र तक पहुंच गया है। युवराज अर्ककीर्ति आदि सभी मुख्यजनों ने कुछ-कुछ स्वप्न देखे जिसके फलस्वरूप भगवान् का मोक्षगमन निकट समझ भरतेश्वर कैलास पर्वत पर पहुंच गये। भक्तिवंदना आदि करके चौदह दिन तक महामह पूजा करते रहे। माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन सूर्योदय के शुभ मुहूर्त में भगवान वृषभदेव पूर्व दिशा की ओर मुंह करके अनेक मुनियों के साथ पर्यंकासन से विराजे हुए अघातिया कर्मों का नाश कर एक समय में सम्यक्त्वादि गुणों से सहित लोक के अग्रभाग

में जाकर विराजमान हो गये, वहां नित्य निरंजन, शरीर से कुछ कम, अमूर्त, आत्मसुख में निमग्न हो गये।

उसी समय मोक्षकल्याणक की इच्छा से देवों ने आकर भगवान् के शरीर को अत्यन्त पवित्र जानकर 'अग्निकुमार देव' के मुकुट से उत्पन्न अग्नि से संस्कार किया, महान् पूजा की, अनंतर भस्म को अपने मस्तक आदि में लगाकर अपने को कृतार्थ माना। इधर भरत को शोक से व्याकुल देखकर श्री वृषभसेन गणधर ने उन्हें खूब समझाकर इष्टवियोग के दुःख को दूर किया था।

जो वृषभदेव का जीव पहले भव में जयवर्मा, दूसरे भव में महाबल, तीसरे भव में ललितांगदेव, चौथे भव में राजा वज्रजंघ, पांचवें भव में भोगभूमिज आर्य, छठे भव में श्रीधरदेव, सातवें भव में राजा सुविधि, आठवें भव में अच्युतेन्द्र, नवमें भव में चक्रवर्ती वज्रनाभि, दशवें भव में सर्वार्थसिद्धि के अहमिंद्र हुए थे। अनन्तर पञ्चकल्याणकों के वैभव से युक्त समस्त इन्द्र द्वारा वंद्य तीन लोक के गुरु वृषभदेव नाम के प्रथम तीर्थंकर हुए हैं, वे हमारी सदैव रक्षा करें।

सन्तोष कुमार–हे मुनिराज ! मैंने चक्रवर्ती के स्वप्न के फल से पंचम काल की स्थिति को आज प्रत्यक्ष में ज्यों की त्यों देखकर अवगत कर लिया है। घंटे और वंदनमाला की पद्धति के रहस्य को भी समझ चुका हूँ। मुझे आदिब्रह्मा वृषभदेव का चरित बहुत ही रुचिकर लगा है।

१. कहाँ से गर्भ में आये	सर्वार्थसिद्धि
२. जन्मनगरी	अयोध्या
३. पिता	नाभिराज
४. माता	मरुदेवी
५. गर्भतिथि	आषाढ़ कृष्णा २

६. जन्मतिथि	चैत्रकृष्ण नवमी
७. जन्मनक्षत्र	उत्तराषाढ़ा
८. वंश	इक्ष्वाकु
९. आयु	८४ लाख पूर्व
१०. कुमार काल	२० लाख पूर्व
११. उत्सेध	५०० धनुष
१२. शरीर वर्ण	सुवर्ण वर्ण
१३. राज्यकाल	त्रेसठ लाख पूर्व
१४. चिन्ह	वृषभ
१५. वैराग्य कारण	नीलांजनामरण
१६. [illegible]ा तिथि	चैत्र कृष्णा नवमी
१७. दी[illegible] नक्षत्र	उत्तराषाढ़ा
१८. दीक्षावन	सिद्धार्थ
१९. दीक्षोपवास	षष्ठोपवास (छह मास)
२०. दीक्षाकाल	अपराह्न
२१. सहदीक्षित	४००० राजा
२२. छद्मस्थकाल	१००० वर्ष
२३. केवल तिथि	फाल्गुन कृष्ण ११
२४. केवलोत्पत्ति काल	पूर्वाह्न
२५. केवल स्थान	पुरिमताल नगर
२६. केवल नक्षत्र	उत्तराषाढ़ा
२७. समवसरण भूमि	१२ योजन
२८. अशोक वृक्ष (केवल वृक्ष)	न्यग्रोध (वटवृक्ष)
२९. यक्ष	गोमुख
३०. यक्षिणी	चक्रेश्वरी

३१. केवलीकाल	१००० वर्ष कम, एक लाख वर्ष पूर्व
३२. गणधर संख्या	८४
३३. मुख्य गणधर	वृषभसेन
३४. ऋषिसंख्या	८४०००
३५. पूर्वधर	४७५०
३६. शिक्षक	४१५०
३७. अवधिज्ञानी	६०००
३८. केवली	२००००
३९. विक्रियाधारी	२०६००
४०. विपुलमती मुनि	१२७५०
४१. वादीमुनि	१२७५०
४२. आर्यिका संख्या	५००००
४३. मुख्य आर्यिका	ब्राह्मी
४४. श्रावक	३०००००
४५. श्राविका	५०००००
४६. मोक्षतिथि	माघ कृष्ण १४
४७. मोक्षकाल	पूर्वाह्न
४८. मोक्ष नक्षत्र	उत्तराषाढ़ा
४९. मोक्ष स्थान	कैलास पर्वत
५०. सहमुक्त	१००००
५१. योगनिवृत्ति	१४ दिन पूर्व

●●●